मूल्य १०/-

मान मंदिर बरसाना

मासिक पत्रिका, वर्ष १०, अंक ०२, श्रीकृष्ण स.५२५१, 'माघ-फाल्गुन' वि.सं. २०८२ (फरवरी २०२६ ई.)

ब्रज की रसभरी होली

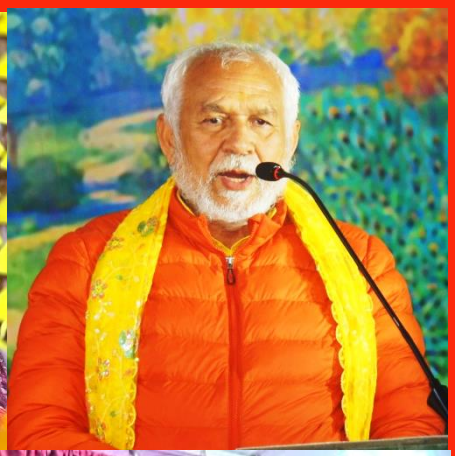

“श्रीजी संगीत विद्यालय” का प्रथम वार्षिकोत्सव मनाया गया

अनुक्रमणिका

क्रमांक	प्रसंग	पृष्ठांक
१	सच्चा योगी 'श्रीभक्तिमय साधक'	०६
२	सुख-संपत्ति की मूल 'गौमाता'	११
३	गौ-संरक्षण की अति आवश्यकता	१३
४	श्रीजी संगीत विद्यालय का प्रथम वार्षिकोत्सव	१६
५	सनातन संस्कृति की भूमि 'भारतवर्ष'	१७
६	श्रीबरसाने में अति सरसता का रहस्य	१८
७	निष्किंचन भक्त की रहनी	२२
८	श्रीधामवास में सावधानी	२८
९	मद से मूढ़ता	३०

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –

"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ-सेवा-यज्ञ में भाग ले ।"

*** योजना ***

अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकालें व मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवाद्रव्य किसी विश्वसनीय गौसेवा प्रकल्प को दान कर गौरक्षा कार्य में सहभागी बन अनन्त पुण्य का लाभ लें । हिन्दूशास्त्रों में अंशमात्र गौसेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है ।

INSTAAL करें --- PLAY STORE से----- MAANINI APP

बाबाश्री के सत्संग/कीर्तन/भजन, साहित्य, आदि यहाँ से

FREE - DOWNLOAD कर सकते हैं व सुन सकते हैं ।

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ८.३० से ९:३० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:०० से ८:०० बजे तक प्रतिदिन live व d-live प्रसारण देख सकते हैं ।

संरक्षक- श्रीराधामानबिहारीलाल , प्रकाशक – राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर ,गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)
mob. **राधाकांत शास्त्री** .....9927338666, Website :www.maanmandir.org ,
(E-mail :info@maanmandir.org)

इस पत्रिका को आप google chrome पर जाकर सीधे free download कर सकते हैं आपको केवल इतना सर्च करना है- हमारे बारे में । मान मंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट (यहाँ से आप पत्रिका सीधे download कर सकते हैं)

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें, जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें । हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है – सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ । जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि।।(श्रीमद्भागवत ३/७/४१) अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है; समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता ।

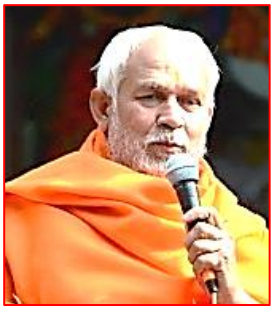

प्रकाशकीय

श्रीभगवान् से मिलने की डोर क्या है ? याद (स्मरण) । **"जल में बसै कुमुदनी, चन्द्र बसै आकाश । जो जाके हृदय बसै, सो ताहि के पास ॥"** चन्द्रमा आकाश में रहता है और कुमुदनी पानी में कितनी दूरी पर रहती है लेकिन चाँद को देखकर के कुमुदनी खिलती है । इसी तरह आकाश में बादल गरजते हैं और मोर उन्हें देखकर नाचता है, मोर जमीन पर रहता है और कभी बादल से मोर मिल नहीं पाता लेकिन क्योंकि उसके हृदय में निरन्तर बादल का प्रेम है तो वह खुशी से नाचता रहता है । जिसके हृदय में जो बसता है, वह उसके ही पास है । हर समय भगवान् को सोचो, भगवान् को हृदय में रखो तो हर समय भगवान् तुम्हारे पास हैं । भगवान् ने कहा है कि "तुम बस मुझे सोचो, सोचने से तुम मेरे पास और मैं तुम्हारे पास आ जाऊँगा ।" **मय्येव मन आधत्स्व .....न संशय: ॥** (श्रीगीताजी १२/८) ये सोचने की डोर, प्रेम की डोर है । जैसे पतंग की डोर हिलाने से पतंग इधर-उधर हो जाती है क्योंकि डोर से ही पतंग उड़ती है । वैसे ही भगवान् से मिलने की डोर क्या है ? भगवान् की याद, भगवान् का चिन्तन । 'भगवान्' गीता में कहते हैं – **"अभ्यासयोगयुक्तेन.....पार्थानुचिन्तयन् ॥"** (श्रीगीताजी - ८/८) "तुम्हारा चिन्तन अगर सच्चा हो गया तो मैं मिल गया ।" चिन्तन के लिये ही सत्संग किया जाता है कि भगवान् की याद आ जाये, याद का अभ्यास हो जाये । अभ्यास कैसा हो ? ऐसा नहीं कि माला लेकर बैठ गये और सोचते हैं कि अब पंगत का समय है । बोले - इसे अभ्यास नहीं कहते हैं । अभ्यास उसे कहते हैं कि चित्त दूसरी जगह न जाये । खीर खाते-खाते भी खीर का स्वाद नहीं, बस प्रभु की याद बनी हुई है । सामने बच्चा खड़ा है, स्त्री खड़ी है पर फिर भी प्रभु की याद बनी हुई है । कोई बीमार है या कोई कष्ट है, फिर भी भगवान् की याद बनी हुई है; ये है याद, ये है प्रभु का सच्चा चिन्तन । दूसरी जगह कहीं भी मन जाये ही नहीं । अगर तुमने ऐसा कर लिया तो प्रभु के पास पहुँच जाओगे, निश्चय पहुँच जाओगे । भगवान् के पास पहुँचने का जो सहारा है वह ये 'याद' ही है । जो भगवान् की याद करते हैं, वे पहुँच जाते हैं । ये सहारा, ये डोर हमें कहाँ से मिलेगी ? सत्संग से । ये डोर हमें सत्संग से मिलती है । श्रीइष्ट की याद करते-करते हृदय में विशुद्ध भाव उत्पन्न हो जाता है, फिर उसमें प्रभु-प्रेम का अंकुर पैदा होने लगता है, जिसके कारण वह प्रेमी भक्त हर क्षण, हर पल वह अपने श्रीप्रभु की सोच में ही खोया रहता है, निरन्तर चिन्तन-स्मरण करता रहता है; यहाँ तक कि प्रभु के बिना उसे हर सुख सूना-नीरस लगने लगता है, कुछ भी अच्छा नहीं लगता । सारा संसार सूना-सूना लगता है । ये भक्त की अवस्था पूर्वराग कहलाती है । जैसे मछली को पानी से निकालकर दूध के सागर में रख दो तो वह जीवित नहीं रहेगी ।

"जाकौ मन लाग्यौ नँदलालहिं, ताहि और नहिं भावै हो । जौ लै मीन दूध मैं डारै, बिनु जल नहिं सचु पावै हो ॥"

प्रेम की परिभाषा यही है कि अपने प्रेमास्पद के बिना रहा ही न जाय, वही सच्चा प्रेम है । शरणागति शरीर की नहीं बल्कि मन की होती है । जब प्रेम होता है तो इतना तादात्म्य हो जाता है कि वहाँ श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कुछ दीखता ही नहीं । प्रभु तो ऐसे दयालु हैं कि अगर हम एक कदम भी उनकी ओर बढ़ायेंगे तो प्रभु हमारी तरफ सौ कदम बढ़ायेंगे । एक बार प्रभु की ओर चलकर तो देखो, स्वयं भक्तवत्सल भगवान् कहते हैं –

"जो तू धावै एक पग, तो मैं धाऊँ पग साठ । जो तू करौं काठ, तो मैं लोहे की लाठ ॥"

हर वर्ष की भाँति इस वर्ष भी बरसाना की सुप्रसिद्ध लट्ठमार रंगीली होरी (फाल्गुन, शुक्ल, नवमी; २५ फरवरी) के एक दिन पूर्व रात्रि बेला में नाट्य-मंचन की प्रस्तुति सम्पन्न होगी ।

कार्यकारी अध्यक्ष
राधाकान्त शास्त्री
श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

॥ राधे किशोरी दया करो ॥

हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो ।
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो ।
विषम विषय विष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो ।
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो ।
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो ।
कबहुँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्‌यो ।

सच्चा योगी 'श्रीभक्तिमय साधक'

बाबाश्री द्वारा कथित श्रीमद्भगवद्गीता (१६-१८/२/२०१२) से संकलित

भावाभिव्यक्ति –

अध्यक्ष – डॉ. श्रीरामजीलालजी शास्त्री,

श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

अर्जुन ने श्रीभगवान् से कहा –

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन । तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ (श्रीगीताजी ३/१)

हे जनार्दन ! यदि कर्म से बुद्धि (ज्ञान) बड़ी है तो आप मुझको इस घोर कर्म (युद्ध) में क्यों लगाते हैं ?

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे । तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ (श्रीगीताजी ३/२)

ऐसा लगता है कि आप व्यामिश्र (मिले-जुले) वाक्य से मेरी बुद्धि को मोह में डाल रहे हैं । कर्म बड़ा है कि ज्ञान बड़ा, एक निश्चय करके बताइए, जिससे मैं श्रेय को प्राप्त करूँ; यह प्रश्न है अर्जुन का । तब श्रीभगवान् ने कहा –

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ । ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ (श्रीगीताजी ३/३)

इस संसार में दो प्रकार की निष्ठायें हैं, यह मैंने तुमसे पहले कहा था; इनमें ज्ञानयोग से तो सांख्ययोगियों की निष्ठा तथा कर्मयोग से योगियों की निष्ठा होती है । ये दो प्रकार की निष्ठायें भगवान् ने पहले कही थीं – **एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ।** (श्रीगीताजी २/३९) 'सांख्य में यह बात कही गयी है, अब कर्मयोग में यह बुद्धि सुनो' - वहाँ की बात भगवान् अब 'गीताजी ३/३ में' यहाँ कह रहे हैं । ज्ञानयोग और कर्मयोग के विषय में बहुत बड़ा विवाद है । श्रीबाबामहाराज अपने बचपन का अनुभव बताते हुए कहते हैं कि जब मैं अल्पायु का था, उस समय ज्ञानयोग (कर्मसन्यास) और कर्मयोग को लेकर के झगड़ा चल रहा था; हमारे सामने ये सब झगड़े चल चुके हैं, हम उस समय छोटे थे लेकिन हमें विवेक था कि यह झगड़ा बेकार का है । साधु लोग सन्यास को बड़ा मानते हैं, सन्यास में ज्ञान योग होता है और जो सन्यासी नहीं हैं, गृहस्थी हैं, वे कर्मयोग को बड़ा मानते हैं क्योंकि वे कर्म भी करते हैं जैसे किसी का व्यवसाय है, नौकरी है । एक गृहस्थ जीविकोपार्जन के लिए कर्म करता है और भजन भी करता है, अतः वह कर्मयोग को श्रेष्ठ समझता है । संत लोग कुछ नहीं करते हैं और यह एक आश्चर्य की बात है कि भारत में लाखों साधु हैं, उन सबका पालन-पोषण भगवान् कर रहे हैं तो वे ज्ञानयोग को बड़ा मानते हैं । साधु-संतों का यह मत है कि कर्म करने की कोई आवश्यकता नहीं है, हमको भी तो भोजन भगवान् देता ही है, इसलिए केवल ज्ञान की चर्चा करो । अतः ये दो मत प्रारम्भ से रहे हैं । जबकि गीता में कर्मसन्यास से कर्मयोग को बड़ा माना गया है । यह बड़ा गम्भीर प्रश्न है और इस पर बड़े-बड़े विवाद हो चुके हैं परन्तु श्रीभगवान् ने स्पष्ट कहा है – **'तयोस्तु कर्मसन्न्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते'** (श्रीगीताजी ५/२) कर्मसन्यास से कर्मयोग बड़ा है, यहाँ भगवान् ने स्पष्ट कर दिया है कि यदि कोई गृहस्थ भी भजन कर रहा है तो वह बड़ा है । 'सन्यास' केवल लाल वस्त्र पहनने से नहीं होता है । किसी के हृदय में यदि राग-द्वेष नहीं है तो वह सन्यासी ही है, फिर चाहे उसका वस्त्र सफ़ेद हो अथवा लाल । **'ज्ञेयः स नित्यसन्न्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति । निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥'** (श्रीगीताजी ५/३) वस्त्र आदि बदलना तो केवल ऊपरी सन्यास है । नित्य सन्यास यह है कि इसमें कोई निश्चित वेष नहीं है, 'न काङ्क्षा' - कहीं राग नहीं है । वह नित्य सन्यासी है और फिर वह बन्धन से आराम से छूट जाता है । कर्मसन्यास से कर्मयोग क्यों बड़ा है, इसके कई कारण भगवान् ने बताये हैं । कर्मयोग बड़ा है क्योंकि उसमें मनुष्य कर्म भी करता है और उससे सृष्टि का कार्य चलता है । बिना कर्मयोग के कर्मसन्यास नहीं हो सकता ।

सन्न्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः । योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ॥ (श्रीगीताजी ५/६)

सफेद कपड़े, लाल कपड़े का परमार्थ से कोई मतलब नहीं है, मुख्य वस्तु भगवान् का प्रेम होना चाहिए। भगवान् का प्रेम या ज्ञान बड़ी चीज है। यद्यपि भगवान् ने (गीता ५/२) कर्मसन्यास से कर्मयोग को बड़ा बताया है, फिर भी वेष के कारण लाल कपड़े वाले अपने को बड़ा मानते हैं; जबकि चैतन्य महाप्रभु ने जब सन्यास लिया तो नित्यानन्दजी ने उनके सन्यास के प्रतीक दंड को तोड़ दिया था क्योंकि वेष आदि व्यर्थ है, वेष का गौरव रखना बेकार है। अब श्लोक 'श्रीगीताजी ३/३' पर आते हैं। भगवान् अर्जुन से कहते हैं कि मैंने तुमको दो निष्ठायें पहले बतायी थीं। कब बतायीं ? श्रीगीताजी २/३९ में – **'एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये .....'** सांख्य का रास्ता अलग है और योग (कर्मयोग) का रास्ता अलग है। **'ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन् योगिनाम्'** - सांख्य वाले ज्ञानयोग से और कर्मयोगी कर्मयोग से उपासना करते हैं; ये दो बात भगवान् बता रहे हैं। दो अलग-अलग नाम क्यों हैं ? निष्ठा की भिन्नता से। सांख्ययोगी ज्ञान की बातों में निष्ठा अधिक रखता है। कर्मयोगी कर्म में निष्ठा ज्यादा रखता है। दोनों एक ही हैं। दोनों में भेद मानने वाले पण्डित नहीं, मूर्ख हैं। इस बात को भगवान् ने ही कहा है – **'साङ्ख्ययोगो पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।'** बाला अर्थात् बच्चे या मूर्ख लोग सांख्य और योग (कर्मयोग) को अलग-अलग मानते हैं। लेकिन **'एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फ़लम् ॥'** (श्रीगीताजी ५/४) किसी एक का आश्रय कर लो, दोनों का फ़ल मिल जाता है। योग हो जाना जरूरी है। **'यत्साङ्ख्यैः प्राप्तये स्थानं तद्योगैरपि गम्यते। एकं साङ्ख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥'** (गीता ५/५)
जो फ़ल साङ्ख्य से मिलता है, वही योग से भी मिलता है। सच्चा ज्ञाता कौन है, जो साङ्ख्य और योग को एक मानता है। लाल कपड़ा और सफ़ेद कपड़ा का विवाद है, वस्तुतः दोनों एक ही हैं। भगवान् इसी के आगे फिर कहते हैं –

सन्न्यासस्तु महाबाहो दुखःमाप्तुमयोगतः। योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ॥ (श्रीगीताजी ५/६)

बिना योग के तो सन्यास मिलेगा ही नहीं। योग से युक्त मुनि बहुत जल्दी ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है, इसलिये ये बातें भगवान् के द्वारा निर्णीत कर दिए जाने के बाद भी लोग सांख्य और योग को अलग-अलग मानते हैं अपने बड़प्पन के कारण। जो लाल वस्त्र पहनने वाला सन्यासी है, वह सांख्ययोग को बड़ा मानता है और दूसरा कर्मयोग को बड़ा मानता है; जबकि दोनों एक हैं, अपनी-अपनी जगह ठीक हैं, भेद मानना गलत है। सांख्य वाले ज्ञानमार्ग से ज्ञान की निष्ठा से चलते हैं और कर्मयोग वाले कर्म की निष्ठा से चलते हैं। अब आगे भगवान् कहते हैं –

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते। न च सन्न्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ (श्रीगीताजी ३/४)

कोई आदमी कहे कि हमको नैष्कर्म्य प्राप्त करना है (नैष्कर्म्य अर्थात् कर्म करने के बाद उसका बन्धन न होना) तो हम कर्म ही नहीं करेंगे 'कर्म न शुरू करने से ही हमको नैष्कर्म्य मिल जायेगा'। यदि कोई आदमी ऐसा सोचता है तो भी यह बात गलत है और कोई आदमी सोचे कि सन्यासी हो जायें परन्तु केवल सन्यासी हो जाने से हम सिद्ध नहीं हो सकते, लाल कपड़ा पहनकर स्वामीजी हो गए, इसी से सिद्धि नहीं मिलती क्योंकि तुम स्वामीजी बनकर कुछ नहीं कर रहे हो। ये तुम्हारा धोखा है कि सन्यास लेने पर हमें कोई कर्म नहीं करना है।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। कार्यते ह्यवशःकर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ (श्रीगीताजी ३/५)

कोई आदमी कहे कि हम कर्म ही नहीं करेंगे तो वह मूर्ख है। भगवान् कहते हैं कि कोई भी एक क्षण को अकर्मा नहीं रह सकता। लेटा है तो लेटना भी कर्म है, सोया है तो सोना भी कर्म है। कोई भी एक क्षण को अकर्मा नहीं रह सकता, पड़ा है तो सोच रहा है, अतः मन से कर्म हो रहा है। प्रकृति के जो गुण हैं, उससे जबरदस्ती कर्म करा लेंगे। जैसे पड़ा है तो सोच रहा है, सोचना क्या है ? यह मन का कर्म है। तमोगुण का भाव है – 'काम न करना, आलस्य, प्रमाद, निद्रा इत्यादि' अतः उसे तामसी कर्म करना पड़ रहा है। वह सोच रहा है कि हम कुछ नहीं कर रहे हैं। 'अवशः' - अवश का अर्थ है कि हर आदमी प्रकृति के आधीन है। प्रकृति के गुणों से युक्त होकर के प्रकृति के गुण मनुष्य से कर्म करा लेते हैं। तामस कर्म है, राजस कर्म है, सात्विक कर्म है। अगर कुछ नहीं कर रहा है तो तामस कर्म है। मन तमोगुण में है। हम बैठे हैं, लेटे हैं, कुछ नहीं कर रहे हैं लेकिन मन आलस्य में है, प्रमाद में है तो तामस कर्म हो रहा है। हम कामनाओं का चिन्तन

कर रहे हैं तो वह राजस कर्म है । चाहे हम कर्म करें या न करें । चिन्तन कर रहे हैं काम भाव का तो वह राजस कर्म है । मोक्ष की चिन्ता कर रहे हैं, अच्छी बातों को सोच रहे हैं तो चाहे ऊपर से हम काम नहीं कर रहे हैं लेकिन सात्विक कर्म हो रहा है । 'प्रकृतिजैर्गुणैः' - प्रकृति के तीनों गुणों द्वारा सात्विक, राजस और तामस कर्म हर आदमी को करना पड़ता है । वह केवल धोखे में है कि हम कुछ कर्म नहीं कर रहे हैं, तामस भाव में डूबा हुआ है । अधिकतर दुनिया तामस कर्म में ही डूबी हुई है। तामस कर्म से श्रेष्ठ है राजस कर्म । राजस कर्म से श्रेष्ठ है सात्विक कर्म ।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् । इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ (श्रीगीताजी ३/६)

यह एक बहुत सच्ची बात भगवान् ने कही, प्रायः जो लोग साधु (महाराज, महन्त, मण्डलेश्वर) बन गए, वे कर्मेन्द्रियों से कर्म नहीं करते, सेवा इत्यादि करना बेइज्जती (अपमान) समझते हैं । जब कर्मेन्द्रियों से कर्म नहीं करते तो मन के द्वारा कर्म करना पड़ता है । मन से कर्म करोगे अर्थात् संसार के बारे में सोचोगे तो वह मिथ्याचार (ढोंग) है, सन्यास नहीं है । वह केवल एक ढोंग है कि हम स्वामीजी बन गए और काम नहीं कर रहे हैं । कर्मेन्द्रियों को रोक लिया, संयम कर लिया लेकिन मन से विषयों का स्मरण हो रहा है । 'इन्द्रियार्थ' का अर्थ होता है विषय । 'विषय' का मतलब केवल स्त्री नहीं है, अपना मान-सम्मान, अहंता आदि सब विषय है; इनके बारे में जो सोचता है, वह 'विमूढात्मा' पूरा मूर्ख है; 'मिथ्याचारः' - उसको ढोंगी समझना चाहिए, कर्मेन्द्रियों से कर्म न करना ही उसने समझ रखा है । भगवान् कहते हैं कि कर्म अवश्य करो, कर्मफल का त्याग करो –

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन । मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥' (श्रीगीताजी २/४७)

दो तरह के अधिकार होते हैं – 'कर्माधिकार और फलाधिकार' । केवल कर्म करने में ही तुम्हारा अधिकार है, तुम्हारी सृष्टि इसीलिए हुई है, तुमको मनुष्य कर्म करने के लिए ही बनाया गया है । 'मा फलेषु' - फलों की ओर मत जाओ, फलों से हट जाओ, इसका मतलब ये नहीं कि कर्म छोड़ दो । 'मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि' - अकर्मा भी मत रहो । कर्मासक्ति करो, फलासक्ति छोड़ दो । अकर्मासक्ति मत करो । हम काम नहीं करेंगे, यह कभी मत सोचो क्योंकि इससे तुम कर्महीन हो जाओगे और कर्महीन हो नहीं सकते जैसा कि गीता '३/५' में कहा गया, कोई मनुष्य कभी भी कर्महीन नहीं हो सकता । तुम अकर्मा नहीं रह सकते । प्रकृति के गुण तुमसे काम करा लेंगे । क्या करा लेंगे ? मन से विषयों को सोचोगे । ऊपर से पड़े हुए हैं, लेटे हुए हैं, चुपचाप बैठे हैं लेकिन मन तो काम करता ही है, मन तो चिन्तन करता ही रहता है चौबीस घंटे । 'इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा' - तो तुम पाखण्डी बन जाओगे । मिथ्याचार उसको कहते हैं जैसे झूठ बोलना । हम काम नहीं कर रहे हैं लेकिन मन तो हमारा काम कर रहा है । कर्मयोग क्या है ? कर्मयोग है - कर्म करना और फल को छोड़ना । मन क्या है ? ये एक ऐसा भूत है, जो कभी रुकता नहीं, काम करता रहता है । एक आदमी ने भूत की सिद्धि की, बहुत मेहनत से, मन्त्रादि जपा था । उसके सामने भूत आया और बोला हमको तुम काम बताओगे तब तो हम तुम्हारे आधीन रहेंगे और यदि काम नहीं बताओगे तो तुमको खा जायेंगे । आदमी बोला – 'ठीक है, बुहारी लगा दो ।' भूत दो मिनट में बुहारी लगा के आ गया, क्योंकि वह भूत है, फिर बोला - काम बताओ, आदमी ने कहा कि मेरे लिए लड्डू लाओ, झट भूत ने लड्डू ला दिया फिर बोला – 'काम बताओ, नहीं तो खा जायेंगे ।' वह आदमी बहुत पछताया कि ऐसे भूत की सिद्धि से क्या लाभ ? तब वह अपने गुरु के पास गया, जिनसे मंत्र लिया था, बोला – 'महाराज ! हम कैसे इस भूत से अपने प्राण बचावें ।' गुरु बोले – 'ऐसा करो, मकान के आँगन में एक खम्बा गाड़ दो । जब कोई काम न हो तो भूत से कह दो कि इस खम्बे पर बार-बार उतर और चढ़, जब तक हम कोई दूसरा काम न बतायें, तब तक तू यही काम करते रहना ।' गुरु जी के बताये इस उपाय से उस आदमी के प्राण बच गये ।

जैसा कि भगवान् ने ३/५ में कहा – **'न हि कश्चित्क्षणमपि..... ।'** कोई मनुष्य एक क्षण भी अकर्मा नहीं रह सकता । मन एक ऐसा भूत है, जो सदा काम करेगा । बैठे हो तो भी सोचता रहेगा, लेटे हो तो भी सोचता रहेगा । अकर्मा नहीं रह सकता । जब तक जीवित हो, मन सदा काम करेगा । यह प्रकृति के गुणों के आधीन काम करता है । ज्यादातर

विषयों का चिन्तन करेगा । वही लड़के परीक्षा में फेल होते हैं, जो पढ़ते नहीं हैं । जिनका पढ़ने में मन नहीं लगता है, वे लड़के इधर-उधर घूमते हैं, आवारा होते हैं । गीता '५/५' में बहुत अच्छी बात कही गयी है । **'सन्न्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः'** जो कर्मयोग नहीं कर रहा है, वह साधु बनकर भी बेकार है, उसे कुछ नहीं मिलेगा । 'सन्यास' बिना कर्म किये नहीं हो सकता है, दुःख (कष्ट) से उसे सन्यास मिलेगा और जो कर्म कर रहा है – **'योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ।'** कर्म करने वाले मुनि को बहुत जल्दी ब्रह्म की सिद्धि हो जायेगी । इसलिए कर्म, सन्यास में सहायता देता है, कैसे देता है, कर्म करने वाले का मन रुकता है, फँसा रहता है । अंग्रेजी में कहावत है - 'an empty mind is a devil's workshop .' 'रिक्त (खाली) मन शैतान का कारखाना होता है ।' जो खाली मन है, वह इधर-उधर की सोचेगा और उसको कभी भी ब्रह्म की सिद्धि नहीं होगी । इसलिए भगवान् ने यह एक सत्य बताया । जितने भी साम्प्रदायिक लोग हैं, ये मेरा-तेरा करते हैं, क्यों करते हैं, क्योंकि इनके पास कर्म नहीं है, बैठे-बैठे खाते हैं तो क्या करें, इसीलिए राग-द्वेष से घिरे रहते हैं । 'हम बड़े, तुम छोटे, हमारा वेष बड़ा, लाल कपडा बड़ा, सफ़ेद कपडा बड़ा' - इन्हीं सब चीजों में ये लोग लगे रहते हैं । अकर्मा रहने से प्रकृति के गुण जोर मारते हैं, अकर्मा तुम रह नहीं सकते । जो अकर्मा है, वह क्या करेगा, उसका मन केवल विषयों की ओर जायेगा, बैठे-बैठे सोचेगा, मिथ्याचार करेगा । मिथ्याचार माने ऊपर से तो त्यागी बन गया है, कर्म नहीं कर रहा है लेकिन मन तो सोच रहा है । कर्म नहीं कर रहा है तो मिथ्याचार करेगा, इसलिए मनुष्य को कर्म कभी छोड़ना नहीं चाहिए । अकर्मा तुम रह ही नहीं सकते हो । प्रकृति के गुणों के वश होकर तुमको काम करना पड़ता है । वे काम करा ही लेंगे तुमसे । इस तरह से गीता के ३/५ व ३/६ श्लोकों की व्याख्या हुई । ३/५ में भगवान् ने बताया कि संसार में कोई अकर्मा रह नहीं सकता । ३/६ में बताया कि यदि वह कर्म नहीं करेगा तो मिथ्याचार करेगा, विषयों के बारे में सोचेगा, अकर्मा नहीं रह सकता । कर्म करने वाला ही योग को प्राप्त होता है। कर्म करने वाले का ही मन संयम में होगा ।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते । योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ (श्रीगीताजी ६/३)

किसी भी योग में चढ़ना हो, चाहे ज्ञानयोग हो चाहे भक्तियोग हो, चाहे कोई योग हो, उसके लिए कर्म करना आवश्यक है । अगर तुम ज्ञानयोग पर भी चढ़ते हो तो उसके लिए भी कर्म जरूरी है । भक्तियोग पर भी चढ़ते हो तो कर्म जरूरी है । पड़े-पड़े सो रहे हो, वहाँ न कथा है न कीर्तन है तो कोई योग तुमको नहीं मिलेगा । किसी भी योग पर चढ़ने के लिए कर्म जरूरी है । जो कर्म छोड़ देता है, उसके लिए कोई योग नहीं है । इसलिए भगवान् ने कहा कि कर्म नहीं छोडना चाहिए । अकर्मा मत बनो, इससे तुमको कोई भी योग नहीं मिलेगा । जो लोग कथा-कीर्तन छोड़ देते हैं, उनके लिए कोई योग नहीं है । कोई रास्ता नहीं है उनके लिए । जैसे भक्तियोग पर चढ़ना है तो भक्ति सम्बन्धी कर्म जरूरी है । ज्ञानयोग पर चढ़ना है तो ज्ञान की बातें जरूरी हैं, ज्ञान सम्बन्धी कर्म करना जरूरी है । कर्म के बिना हम रह नहीं सकते । ये सब समझ लेना चाहिये, नहीं तो जीवन भर मिथ्याचार होता है । ऊपर से हम काम नहीं करते लेकिन भीतर से मन चिन्तन करता रहता है । इसलिए हमको मिथ्याचार अर्थात् वैराग्य का ढोंग-पाखण्ड नहीं करना चाहिए कि हम विरक्त हैं, अब काम क्यों करें ? ऐसा सोचने वाले को कभी भी कोई योग नहीं मिलेगा । किसी भी योग पर चढ़ने के लिए कर्म करना जरूरी है । जो आलसी है, निकम्मा है, प्रमादी है, उसके लिए कोई योग नहीं है । वह तो तामस योग में मरता है और उसी को श्रेष्ठ समझता है । हम सबको याद रखना चाहिए कि किसी योग पर चढ़ने के लिए कर्म करना आवश्यक है, नहीं तो कोई भी योग हमको नहीं मिलेगा, न भक्तियोग मिलेगा, न ज्ञानयोग मिलेगा, न कर्मयोग मिलेगा । जो काम नहीं करता, निकम्मा है, वह तो फेल हो जाता है, उसे शून्य(जीरो) अंक मिलता है । जो कर्म करता है, वही किसी योग की प्राप्ति करता है, अतएव कर्म करना अत्यधिक आवश्यक है । **'यस्त्विन्द्रियाणि.....विशिष्यते ॥'** (श्रीगीताजी ३/७)

भगवान् ने कहा कि कोई भी आदमी एक क्षण को भी काम (कर्म) किये बिना नहीं रह सकता । प्रकृति के गुणों के द्वारा अवश्य कर्म उससे कराया जायेगा । मन तमोगुण में है तो सोयेगा, रजोगुण में है तो कल्पना करेगा, चिन्तन करेगा

संसार के विषयों का, सतोगुण में है तो ज्ञान की बात सोचता है । इसलिए प्रकृति के गुण सब काम करा लेते हैं, नहीं करना है तो भी उसको करना पड़ता है क्योंकि कर्म किये बिना कोई रह नहीं सकता । आगे भगवान् कह रहे हैं कि जो लोग कर्मेन्द्रियों को संयम में करके, जैसे हम मौन हैं तो कर्मेन्द्रिय वाणी है, उसको रोक लिया लेकिन ये जरूरी नहीं कि मौन हैं तो काम नहीं कर रहे हैं । मन से सोचता है आदमी, वो भी एक काम है । ऊपर से मौन हैं, हाथ-पाँव रोक लिया है लेकिन मन से स्मरण कर रहे हैं विषयों का तो उसका मन अत्यंत विमूढ़ है । विमूढ़ ज्यादा है क्योंकि अपनी कमजोरी नहीं समझ रहा है कि मन कहाँ है, मन क्या कार्य कर रहा है । सोच ही नहीं रहा है, पाखण्डी है । ऊपर से मौन है, हाथ-पाँव से काम ही नहीं कर रहा है लेकिन मन से संसार (विषय) सोच रहा है तो वह पाखंडी है, मिथ्याचारी है । मिथ्याचारी मतलब मिथ्या आचरण, कुछ नहीं मिलना है उसको ऐसे संयम से । ऊपर से संयम है, हाथ-पाँव रोक लिया है और बैठा है ध्यान लगाकर के लेकिन ध्यान है संसार में तो भगवान् कहते हैं कि वह मिथ्या आचरण है, इसमें कुछ नहीं मिलना है । इसके अलावा उस मिथ्याचारी से जो मौन है, हाथ-पाँव से काम नहीं कर रहा है, इन्द्रियों को मन से रोक लिया है । मन से रोक लिया मतलब इन्द्रियाँ संसार की ओर नहीं जा रही हैं, उसकी तुलना में जो कर्मेन्द्रियों से कर्मयोग करता है, आसक्ति रहित है, वह उस ध्यान योगी से बड़ा है, जिसका मन संसार को सोच रहा है । इसलिए कर्मयोग बडा है -

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः । शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः ॥ (श्रीगीताजी ३/८)

नियत कर्म करो, शास्त्र में जो कहा गया है । 'कर्म' बड़ा है अकर्मा होने से । अकर्मा होने के बाद तुम्हारी शरीर यात्रा भी सिद्ध नहीं होगी । शरीर भी स्वस्थ नहीं रहेगा अगर तुम काम नहीं करोगे तो, इसलिए कर्म करना ज्यादा अच्छा है । अकर्मा होने से कर्म करना ज्यादा बड़ा है, यह भगवान् ने कहा है । हम लोगों को कर्म करना चाहिये । भगवान् बार-बार कहते हैं । कर्म न करना ये गलत है । गीता ३/७ में भगवान् ने कर्मयोग को विशेष बताया है । जो लोग कर्म नहीं करते हैं, छोड़ देते हैं, वे भगवान् की आज्ञा नहीं मानते । भगवान् चाहते हैं कि कि हर व्यक्ति कर्मशील रहे । संयम मन का होता है, इन्द्रियों का नहीं । इन्द्रियों का संयम कर लिया और मन से हम संसार के बारे में सोच रहे हैं तो वह मिथ्याचार है । हम कर्म कर रहे हैं और मन संसार में नहीं है, कर्मेन्द्रियों से जो कर्म करता है, वह विशेष होता है, क्योंकि कर्म करने से दूसरों को भी शिक्षा मिलती है । गीता '३/८' में श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं - **'नियतं कुरु कर्म....'**

'हे पार्थ ! शास्त्र का नियत कर्म तू कर, अकर्मा रहने से कर्म करना श्रेष्ठ है ।' जितना मनुष्य कर्म करता है, उतना ही भगवान् को प्रिय होता है ।

वैष्णव-वार्ता में एक कथा है कि एक बार दो भक्त थे; एक आटा माँगता था और दूसरा ठाकुरजी की सेवा करता था । श्रीठाकुरजी ने उससे कहा कि तू रसोई भी बनाया कर । दूसरा भक्त आटा माँगता है, तू सेवा करता है तो पूरी सेवा कर । इस तरह कार्य का विभाजन भगवान् ने किया । फिर उसके गुरु ने समझाया कि 'सेवा' का मतलब यह नहीं है कि थोड़ी देर सेवा करके फिर आराम किया । कर्म तुम जितना करोगे, उतना ही भगवान् प्रसन्न होते हैं । सेवा करते समय जो भक्त अपने को चौबीस घंटे सेवा में लगाये रखते हैं, जैसे - पंखा हाँकना आदि, वे लोग सेवक हैं । सेवा के बिना एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाना चाहिए । 'जीव' दास है, दास अर्थात् जो चौबीस घंटे सेवा में लगा रहे । दास (सच्चे सेवक) को कभी भी छुट्टी नहीं होती है । इसलिए जो सेवक है उसको चौबीस घंटे में अपने को पच्चीस घंटे काम में लगाने की सोचना चाहिए । कर्म से रहित होने को भगवान् ने मना किया है । **'कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः'** अकर्मा से 'कर्म करने वाला' श्रेष्ठ है ।

|| बरसाने महल लाढ़िली के ||

और पास वाके बाग़-बगीचा, बिच-बिच पेड़ माधुरी के ।

तिन महलन विहरत पिया-प्रीतम, निशदिन प्रिया चाढ़िली के ।

वृन्दावन हित रंग बरसत है, छिन -छिन रस जु बाढ़िली के ||

सुख-सम्पत्ति की मूल 'गौमाता'

भावाभिव्यक्ति – परम गौ-सेवी
संत 'श्रीब्रजशरणजीमहाराज'
श्रीमाताजी गौशाला, श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

भगवान् श्रीराम के राज्य में गौएँ पूज्य थीं तथा उनकी सेवा करना राजधर्म था । श्रीकृष्ण का नाम गोपाल इसीलिये है क्योंकि कृष्ण गौओं के पालक हैं, उनसे अत्यधिक प्रेम करते हैं, गायों का पालन-पोषण करने के कारण ही उन्हें 'गोपाल' कहते हैं ।

कलिकाल की घटना है – एक दिन एक कसाई गाय को डन्डे से मारता हुआ ले जा रहा था । वहाँ से बालक शिवाजी जा रहा था । शिवाजी ने तुरन्त अपनी तलवार निकाली और एक वार से रस्सी काट दी, जिससे गाय भाग गई तथा दूसरे वार से कसाई का सिर काट दिया, बाद में शिवाजी राजा बने तो उनको भी लोग 'गौपालक' कहते थे ।

सनातन धर्म में जन्म संस्कार से लेकर दाह संस्कार तक दान के रूप में ज्यादातर गौ-दान करते हैं । जिस राज्य में गौ-हत्या होती है, उस राज्य से आध्यात्मिकता दूर हो जाती है । गौमाता के दूध से ही शुद्ध सात्त्विक मन-बुद्धि बनते हैं, जिससे भक्ति सहज ही बढ़ती है, आसुरी-तामसी शक्ति का विनाश होता है । गायों के रहने से, उनकी सेवा करने से भक्तिमय (आध्यात्मिक) वातावरण बनता है, अशुभ (अमंगल) नष्ट होते हैं ।

दूध गरम करने या तपाने के बाद मावा (खोवा) बनने तक गाय के दूध के मावे में विटामिन A ४०० आई. यू. होता है, जबकि भैंस के दूध के मावे में विटामिन कुछ भी नहीं होता है । इसलिए पेड़ा गाय के दूध में ही बनाना चाहिए ।
गाय के घी में विटामिन A – १९०० आई. यू. । भैंस के घी में विटामिन A- ९०० आई. यू. । गाय के घी से हवन करने से जहाँ-जहाँ जितनी दूरी में उस हवन के धुएँ का प्रभाव फैला, उतने दायरे में किसी भी प्रकार के कीटाणु अथवा बैक्टीरिया नहीं रहते । वह क्षेत्र रोग बढ़ाने वाले कीटाणुओं और बैक्टीरिया के प्रभाव से मुक्त हो जाता है ।

कृत्रिम वर्षा कराने के लिए वैज्ञानिक मुख्य रूप से प्रोपलीन ऑक्साइड गैस का प्रयोग करते हैं । यही प्रोपलीन ऑक्साइड गैस हमें गाय के घी से हवन करने पर प्राप्त होती है । गाय के घी को चावल के साथ मिलाकर जलाने पर अत्यन्त महत्वपूर्ण गैस जैसे इथीलीन ऑक्साइड, प्रोपलीन ऑक्साइड, फार्मल्डीहाईड इत्यादि बनती है ।इथीलीन ऑक्साइड वही गैस है जो ऑपरेशन थियेटर से लेकर जीवन रक्षक औषधि बनाने में प्रयोग होती है । गौघृत के हवन से कार्बन-डाई-ऑक्साइड के बढ़ते खतरे से बच सकते हैं । जिस घर में गाय रहती है, वहाँ क्षय (टी०बी०) रोग का प्रवेश नहीं होता है । गाय के ताजे गोबर की गन्ध से मलेरिया के रोग नष्ट हो जाते हैं । यह कहावत है जो हमारे देश में कही जाती है - 'उत्तम खेती, मध्यम वान, करे चाकरी कुकर निदान' सबसे उत्तम खेती का व्यवसाय है, मध्यम वान माने जो व्यापार है वो दूसरे नम्बर पर है और करे चाकरी कुकर निदान यानि नौकरी करना तो कुत्ते के जीवन बिताने जैसा माना जाता है । भारत में खेती करना सबसे उत्तम व्यवसाय रहा है, उक्त स्थिति भारत देश में आज से तीन सौ साल पहले तक थी ।

अंग्रेजों का शासन भारत में लगभग सन् १७६० से शुरू माना जाता है । सन् १७६० के बाद लगातार अंग्रेजों ने भारत की खेती पर ऐसे कानून लगाए, ऐसे अंकुश लगाए कि भारत की खेती बरबाद होती चली गई, क्योंकि भारत और चीन के खेती से जुड़े व्यवसायों की ६० से ७० प्रतिशत की हिस्सेदारी पूरे विश्व में रहती थी । यह सब भारत में गौपालन से सम्भव था । बैलों से खेती करने और दूध-दही खाकर किसान-मजदूर पुष्ट रहते थे । दिमाग भी तेज रहता था, ये बातें अंग्रेजों को पसन्द नहीं थीं । तीन सौ साल पहले तक सबसे ज्यादा समृद्धिशाली 'धनवान' किसान वर्ग को ही माना जाता

था, इसलिए खेती को सबसे उत्तम माना जाता है । अंग्रेजी राज से पहले भारत में करीब "सात लाख पचास हजार' गाँव होते थे । सबसे आश्चर्य की बात यही थी कि प्रत्येक गाँव में एक-एक तालाब था, किसी में दो थे परन्तु ऐसा कोई गाँव नहीं था, जहाँ तालाब, बावड़ी नहीं थे । खेती के साथ-साथ पशुधन भी बहुत बड़ी मात्रा में था । गाय-बैल ज्यादा थे, उनके गोबर और गौ-मूत्र का प्रयोगकर किसान खाद बनाते थे जिससे अच्छी पैदावार होती थी । दस्तावेज बताते हैं कि भारत के किसानों के पास धान की एक लाख से ज्यादा प्रजातियाँ होती थीं, सैकड़ों तरह के बाजरे के बीज थे, सैकड़ों किस्म के ज्वार के बीज थे तथा सभी किसान उन्नत खेती करते थे ।

आँकड़े बताते हैं कि करीब तीन सौ वर्ष पहले ब्रिटेन से तीन गुना ज्यादा उत्पादन हमारे भारत देश में होता था फिर आज किसान इतना गरीब क्यों दिखाई देता है, ऐसा क्या हुआ ?

इस सबके पीछे है भारत में अंग्रेजों का आना व भारत में अपनी सरकार चलाना । सर्वप्रथम अंग्रेजों ने खेती व्यवसाय को कमजोर करने के लिए किसानों के ऊपर लगान लगाने का कानून बनाया जो बहुत ज्यादा था । भारत के किसानों पर पचास प्रतिशत लगान लगा दिया गया था । अंग्रेजों ने भारत के उद्योगों पर १०-१२ तरह के टैक्स लगाये थे, जिन्होंने किसानों व उद्योगों को बरबाद कर दिया । जो किसान टैक्स नहीं देते थे उनके घर जला दिये जाते थे, किसान की हत्या करवा दी जाती थी । अंग्रेज किसान की सम्पत्ति को नीलाम करवा देते थे, किसानों को कोड़े से पीटना, उनके गाय, बैल खोल कर ले जाना - इस तरह के अत्याचार किसानों के ऊपर हुए थे । पहले किसान जमीन नहीं बेचता था । कहता था कि जमीन बेचना अपनी माँ बेचने के बराबर है, और कहता था कि जमीन तो परम पिता परमेश्वर की है, हमें तो इसे बेचने का अधिकार ही नहीं है, इस प्रकार किसान कभी भी जमीन नहीं बेचता था । फिर अंग्रेजों ने इस देश में जमीन बेचने व खरीदने का कानून बना दिया और अंग्रेजों ने सस्ते दामों पर किसानों की जमीन जबरदस्ती खरीदना शुरू कर दिया, जमीन छीनने का कानून बनाया, उसका नाम था 'लैण्ड एक्यूजीशन एक्ट' अगर हिन्दी में कहा जाए तो 'जमीन हड़पने का कानून' जो आज भी चलता है । उस समय अंग्रेजों का सबसे भ्रष्ट व बेईमान अधिकारी जिसका नाम 'डलहौजी' था । वह गाँवों में जाता, किसानों से जमीन के दस्तावेज माँगता और नहीं होने पर जमीन सरकारी घोषित करवा देता था । इस तरह किसानों की जमीनें छीनी गयी थीं ।

भारत में खेती का दूसरा केन्द्र बिन्दु गाय और बैल थे क्योंकि गोबर से खाद व गौ-मूत्र से कीटनाशक दवा तैयार होती थी । अतः गाय उस समय भारतीय कृषि व्यवसाय के केन्द्र में थी, अतः अंग्रेजों ने गाय का कत्ल करवाने का कानून बना दिया । अंग्रेजों के आदेश से भारत में गाय का कत्ल होना शुरू हो गया । इससे पहले एक-दो मुसलमान राजाओं को छोड़कर भारत में ऐसा कानून रहा था कि जो गाय का कत्ल करे, उसको फाँसी की सजा दी जाए । अंग्रेजों की सरकार ने भारत में लगभग ३०० से ज्यादा कत्लखाने खुलवाए, जिसमें गाय और गौवंश का कत्ल किया जाता था । लाखों की संख्या में गौवंश को कटवा कर उनका माँस इंग्लैण्ड में भेज दिया जाता था । यूरोप के लोग गाय का माँस सबसे ज्यादा खाते थे और बचे हुए माँस को अंग्रेजी सरकार के फौजी अफसर खाते थे । दस्तावेज बताते हैं कि अंग्रेजों ने सन् १७६० से लेकर सन् १९४७ तक करीब ४८ करोड़ से ज्यादा गाय और बैल-नन्दी का कत्ल करवाया था । इस तरह अंग्रेजों ने भारत की बरबादी की थी - ये तो एक-दो उदाहरण हैं परन्तु हर क्षेत्र, उद्योग, व्यवसाय में ऐसे ही अत्याचार किये जाते थे ।

दुर्भाग्य से आज भारत में आंकड़े बताते हैं कि अंग्रेजों ने भारत में ३५० कत्ल कारखाने चलाए । आज आजादी के ७० साल बाद छत्तीस हजार से ज्यादा कत्ल कारखाने हैं । इन सब कत्ल खानों को बढ़ाने में भारी योगदान कांग्रेस सरकार का व विशेष सहयोग नेहरू परिवार का था । सन् १९६७ के गौरक्षा दिल्ली आन्दोलन में इन्दिरा गांधी ने गोली चलवाकर २४०० गौ-भक्तों की हत्या करा दी थी ।

हिन्दुस्तान में जो प्रथम स्वतन्त्रता क्रान्ति हुई थी, उस क्रान्ति की जो पहली चिनगारी सन् १८५७ में बेरकपुर की छावनी में निकली, जब मंगल पांडे को फाँसी की सजा हुई थी, तब भी बड़ा प्रश्न 'गौमाता' का ही था ।

मंगल पांडे एक श्रेष्ठ नौजवान था, स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचारों से बहुत ज्यादा प्रेरित था । गलती मंगल पांडे से यह हुई कि अंग्रेजों की फौज में नौकरी कर ली, एक दिन मंगल पांडे को पता चला कि जो कारतूस हमें अंग्रेजी सरकार देती है, उन कारतूसों पर गाय की चरबी लगी होती है, गाय की चर्बी लगाये हुए कारतूसों को मुँह से खोलना पड़ता था, इसी से मंगल पांडे ने फैसला कर लिया था कि गाय की चर्बी लगे कारतूसों को मुँह से खोलने से अच्छा है कि ऐसी नौकरी छोड़ दूँ । लेकिन उनके मन में प्रतिशोध भी पैदा हुआ कि जिन अंग्रेजों के अफसरों ने उनको बिना बताए हुए सालों साल उसके मुँह से गाय की चर्बी के कारतूस खुलवाये हैं, मैं उन अंग्रेज अफसरों को जिन्दा नहीं छोड़ूँगा, अतः मंगल पांडे ने हिम्मत की और गाय की चर्बी लगे कारतूसों को लेने से इनकार कर दिया फिर अंग्रेज अफसरों ने दबाब बनाया तो एक दिन मंगल पांडे ने उस अंग्रेज अफसर की बन्दूक से गोली मार कर हत्या कर दी । ऑफीसर की हत्या की बात पूरे देश में प्रचारित हो गई, सबको पता लग गया कि गाय की चर्बी होने के कारण मंगल पांडे ने अंग्रेज अफसर की हत्या कर दी है । गाय की चर्बी लगे कारतूसों को खोलने से मना करने पर मंगल पांडे को सजा देने की बात तय हुई, इसलिए मंगल पांडे ने अंग्रेज अफसर को मार दिया था । सारे देश में एक बगावत की लहर पैदा हुई, गाँव-गाँव नौजवानों के क्रान्तिकारी संगठन बनने शुरू हो गये । गाँव-गाँव गौ-रक्षा समितियाँ भी बनना शुरू हो गईं । पूरे भारत में एक भी गाँव ऐसा नहीं था जहाँ गौ-रक्षा समिति न बनी हो ।

अंग्रेजों का खुफिया विभाग होता था, उसने सूचना दी कि सन् १८७० तक प्रत्येक गाँव में 'गौ-रक्षा समितियाँ' बन चुकी हैं, कोई भी गौ-रक्षा समिति ऐसी नहीं है जिसमें ५० नौजवानों से कम हों । गाँव-गाँव के एक बाजू में गौ-रक्षा समिति काम कर रही है, दूसरी बाजू में भारत में क्रान्ति की बगावत और क्रान्ति की लहर चल रही है । ये दोनों चीजें एक साथ इस देश में चल रही हैं । उस समय सन् १८७० से १८९३ तक मुसलमान भी हिन्दुस्तान में गाय को बचाने के लिए आन्दोलन में साथ लगे हुए थे । अंग्रेजों ने नीति बनाई कि गाय को मुसलमानों से कटवाया जाए जिससे हिन्दू-मुस्लिम के बीच दरार पैदा हो जाएगी । भारत के कत्ल खानों में मुसलमानों को अंग्रेजों द्वारा नौकरी दी गयी लेकिन मुसलमान कत्ल खाने की नौकरी नहीं करना चाहता था । उसे अंग्रेजों ने जबरदस्ती मार पीट कर गाय का कत्ल करवाने के लिए तैयार किया था । सामान्य रूप से इस कार्य के लिए कोई भी मुसलमान तैयार नहीं था ।

धीरे-धीरे अंग्रेजों ने कहना शुरू कर दिया कि गाय हम नहीं मुसलमान काटते हैं । यहीं से दोनों समुदाय में मन मुटाव शुरू हो गया था (CAA की तरह) । हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई लड़ने वाले तमाम नेताओं के लिए गाय का प्रश्न बहुत ही केन्द्रीय प्रश्न था । महात्मा गांधी जैसे लोगों ने गाय बचाने का प्रश्न उठाया जिसमें स्वामी दयानन्द सरस्वती, मदनमोहन मालवीय, स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय, हंसानन्द, लोकमान्य तिलक, चौधरी चरणसिंह इत्यादि ने भी गाय के प्रश्न को उठाया था ।

गौ-संरक्षण की अति आवश्यकता

परम पूज्य श्रीबाबामहाराज के समक्ष गोसेवी संत 'श्रीगोपेशबाबाजीमहाराज' द्वारा 'गौ-संरक्षणार्थ' प्रस्तुत भावोद्गार

श्रीगोपेशबाबा के शब्दों में – "भारतवर्ष के बहुत से गौप्रेमी भक्तों की हाल ही में एक गोष्ठी हुई, उस गोष्ठी में यह विचार-विमर्श किया गया कि आज भारतवर्ष के जो मुखिया हैं, वे मन्दिर-मन्दिर में जा रहे हैं । इसका यह परिणाम है कि वर्तमानकाल में देश के प्रसिद्ध तीर्थस्थलों के मन्दिरों में भी श्रद्धालुओं की इतनी भीड़ है कि वहाँ पाँव रखने की जगह भी नहीं है । वृन्दावन चले जाओ, बरसाना चले जाओ, काशी

और अयोध्या चले जाओ; चूँकि अयोध्या में हाल ही में बहुप्रतीक्षित राम लला के नव मन्दिर का निर्माण हुआ है और हमारे सरकार राजा रामजी वहाँ विराजित हुये हैं । काशी में भी विश्वनाथ मन्दिर का भव्य कॉरिडोर बनाया गया है, द्वारका में भी कॉरिडोर बनाया गया है । प्रायः देश के प्रमुख धार्मिक स्थलों के मन्दिर काफी व्यवस्थित हुए हैं और हमारे देश के प्रधानमन्त्री जब विभिन्न स्थानों के मन्दिरों में जाकर भगवान् को प्रणाम करते हैं तो सारा विश्व आकर्षित होता है, विशेषकर देश का आस्तिक समाज आकर्षित होता है । यही कारण है कि आज धार्मिक महत्त्व के स्थलों और मन्दिरों में श्रद्धालुओं की बहुत भीड़ हो रही है । कश्मीर से धारा – ३७० भी हट गयी है । हमारे राष्ट्र के बहुत से बड़े-बड़े कार्य हुए हैं । एक निवेदन सभी ने याद किया है । बाबा महाराज ! मैं आपके चरणों में ३० वर्षों से हूँ । हमारे संघ के पूर्व के जो कार्यवाहक थे श्रीसुदर्शनजी, विश्व हिन्दू परिषद् के अध्यक्ष श्रीअशोकसिंहलजी और भी कई विभूतियाँ, जिनकी अध्यक्षता में श्रीराममन्दिर और पूज्या गोमाता को लेकर नित्य ही कोई न कोई आन्दोलन होते ही रहते थे । कुछ न कुछ चर्चा होती रहती थी कि अयोध्या में राममन्दिर बनना चाहिए, भारत में गोहत्या बन्द होनी चाहिए । इस समय मोहनभागवतजी राष्ट्रीय सेवक संघ के अध्यक्ष हैं, वे भी आते हैं और इस सम्बन्ध में चर्चा होती है लेकिन पूरे भारतवर्ष में गायों की सुरक्षा व सेवा में आप जैसे जो संत लगे हैं, आपके आनुगत्य में हम जैसे दास लगे हैं, पथमेड़ा वाले पूज्य महाराजजी हैं, पूज्य श्रीमलूकपीठाधीश्वरजी हैं, इस प्रकार सन्तों की जो एक श्रृंखला है, जो आपकी ही प्रेरणा पाकर कार्य कर रहे हैं । ऐसे संत तो लगे हुए ही हैं, पूरे भारत में गोसेवा की एक अलख जगी है । समग्र भारत की स्थिति यदि देखी जाए तो आधे से कम राज्यों में गोहत्या के निषेध का कानून है, वह ढुलमुल कानून है । कई बार उसमें भी बहुत संघर्ष दिखाई देता है । आधे से अधिक राज्य जैसे दक्षिणांचल, पूर्वांचल, बंगाल आदि जो राज्य हैं, उन राज्यों में अभी तक गौ की हत्या को प्रतिबन्धित करने का कोई कानून नहीं बना है । योजना तो बनी है किन्तु किया क्या जाये ? ऐसा बोलते हैं कि इस कारण केन्द्र सरकार के सामने समस्या आ रही है कि हम संसद में गोहत्या को प्रतिबन्धित करने का कानून नहीं बना पाएँगे क्योंकि यह राज्य का विषय होने के कारण केन्द्र सरकार इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकती है । इसलिये षड्-दर्शन के सन्तों ने तथा कुछ राजनीतिक विचारकों ने ऐसा कहा कि समग्र भारत में ७८० जिले पड़ते हैं, उन समस्त ७८० जिलों के अन्तर्गत लगभग ५५०० तहसीलें हैं । उन सभी में आने वाली दिनांक २७ अप्रैल को गो-सम्मान दिवस के रूप में मनाया जायेगा । मनाया कैसे जाए ? इसके लिए समग्र तहसीलों में भगवन्नाम कीर्तन करते हुए, भगवन्नाम का सहारा लेते हुए, मन्दिरों में पूजन करते हुए, गोशालाओं में गोपूजन करके, जहाँ गोशाला नहीं हैं, वहाँ मन्दिरों में प्रणाम करके अपने बच्चों को श्रीराम-कृष्ण का स्वरूप बनाकर आगे रखकर, एक बछिया अथवा गाय को आगे करके, भगवन्नाम का सहारा लेकर जो भी तहसीलदार या एस.डी.एम. हों, उससे निवेदन करें, आग्रह करें, जैसे एक भिखारी भीख माँगता है, जहाँ से सुरक्षा मिले, हमारी गौमाता को हर प्रकार से उचित संरक्षण मिले, उचित सेवा मिले । जो कुछ भी घटा केवल गोप्रेमियों के साथ ही घटा, गोपालजी की पूरी की पूरी लीला भी केवल उनके साथ ही घटी, जो गाय से प्रेम करते थे, गाय की सेवा करते थे, गाय की रक्षा करते थे । हमारे कन्हैया की तो आराध्या ही है गौमाता, राम और शिव की भी आराध्या गौमाता है; उन्होंने गाय को पूर्ण सम्मान दिया । उसी प्रकार फिर से वही सम्मान गाय को प्राप्त हो, वैसे तो गाय अखिल विषय की पूज्या माता है लेकिन पूरे विश्व के लोग गाय को नहीं मानते और जहाँ-जहाँ गाय कट गयी, वहाँ से सनातन धर्म भी घटा । उदाहरण के तौर पर पाकिस्तान देखिये, कजाकिस्तान देखिये, तुर्किस्तान देखिये, बलूचिस्तान देखिये, अफगानिस्तान देखिये, बांग्लादेश देखिये, म्यांमार देखिये, जहाँ पहले अखण्ड भारत था, जहाँ-जहाँ से गाय समाप्त हुई, वहाँ आज कोई सनातन धर्म का दीपक जलाने वाला दिखाई नहीं देता है ।

आज हमारे भारत में जितनी भी खेती हो रही है, भारत में रहने वाले जितने भी लोग हैं, सब के सब केवल अपनों के लिए ही कमाते और खाते हैं । हर व्यक्ति सोचता है कि केवल मैं और मेरे ही प्रसन्न रहें, पोषित हों और सुरक्षित रहें लेकिन दुर्भाग्य देखिये एक बाप कमाई करता है, बाजार से सामान लेकर आता है, माँ प्रेम से भोजन बनाकर अपने

बच्चों को खिलाती है । पिता बाजार से जहर खरीदकर लाता है और माता अपने बच्चों को जहर परोसती है, जहर खिलाती है । आज अन्न के रूप में विशुद्धतम जहर उपलब्ध है । जैसा खायेंगे अन्न, वैसा बनेगा मन । आज मन ही दूषित है, मलिन है, जहरीला है, इसीलिए अनाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार और व्यभिचार में समाज के प्रत्येक वर्ग की सहज प्रवृत्ति होती है । श्रीबाबामहाराज ! आज आपकी छत्रछाया में जितने भी लोग पल रहे हैं, वे कहीं न कहीं भगवान् के चिन्तन-मनन में हैं । सन्तों के आनुगत्य में जितने भी लोग जीवन-यापन कर रहे हैं, वे बचे हुए हैं परन्तु वे भी पूरी तरह बचे हुए नहीं हैं । मुझे तो यही प्रतीत होता है कि भारत में दो-चार प्रतिशत को छोड़कर शेष समस्त प्रजा को खाने के लिए पवित्र अन्न उपलब्ध नहीं हो रहा है । ये सभी केवल जहर खा रहे हैं । उसका यही परिणाम है कि भारत में वर्तमानकाल में बहुत अच्छी सरकार के सत्ता में होने के बावजूद भी अनाचार, व्यभिचार और भ्रष्टाचार नहीं मिट सका है बल्कि स्थिति भयानकतम हो गयी है । आज से १५ वर्ष पहले गोमाँस के निर्यात में भारत विश्व में नौवें स्थान पर था किन्तु आज भारत का स्थान गोहत्या करके उसका माँस निर्यात करने के मामले में प्रथम है । ऐसा इसलिए है क्योंकि आज भी इस देश का जो आम जनमानस है, जिसके आराध्य श्रीराम-कृष्ण-शिव हैं, उनकी भी आराध्या गौमाता आज कष्ट में है । उनकी आराध्या को काटकर हम विकास का अनुभव कर रहे हैं, यह बहुत बड़ा दुर्भाग्य है । इस दुर्भाग्य के कलंक से बचने के लिए हमारी गोमाता को सम्मान प्राप्त हो, उसे जो सम्मान हमारे आराध्य ठाकुरजी ने दिया है, उसे जो सम्मान हमारे आराध्य ईश्वरों ने दिया है । इस देश में गोमाता के रक्त की एक बूँद भी न गिरे, उसे हर प्रकार की सुरक्षा प्राप्त हो और हमेशा ही गाय संवर्द्धित और पुष्ट रहे, उसे अच्छी से अच्छी सेवा प्राप्त होवे । एक इंच भूमि भी भविष्य में गो-आधारित कृषि के अतिरिक्त न उत्पन्न हो, ऐसी हमारी कृषि-व्यवस्था बने । एक-एक इंच भूमि, जो गोचर-भूमि है, वह केवल और केवल मात्र गौमाता की सेवा में लगे । इस सबकी व्यवस्था के लिए केन्द्र सरकार के अधीन एक गो-मन्त्रालय बने, जो गोमाता की सेवा के सन्दर्भ में सुन्दर व्यवस्था करे । ऐसी भावना को लेकर सभी सन्तों ने एक योजना बनायी है । बाबामहाराज ! अगर आपके आशीर्वाद से २७ अप्रैल को यह योजना सफल हो जाती है तो हम लोग भगवान् की बहुत बड़ी कृपा मानेंगे और वर्तमान सत्ता को आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा । महाराजजी ! गायें बचेंगी तो राष्ट्र बचेगा और राष्ट्र बचेगा तो हम लोग बचेंगे क्योंकि हम ठाकुर के हैं और ठाकुरजी को गौमाता अत्यधिक प्रिय है । आपके आनुगत्य में यमुनाजी के शुद्धिकरण के प्रयास में हम लोग काफी प्रयत्नशील रहे हैं आर आज भी चेष्टारत हैं, यमुनाजी के लिए हम लोग अब भी चेष्टा कर रहे हैं, फिर भी कोई समाधान नहीं हो पा रहा है । वर्तमान सत्ता के पास अब केवल दो वर्ष का समय बचा है और हमारे पास भी इतना ही समय है । इसलिए अब हमें चूक नहीं करनी चाहिए । गौमाता की रक्षा का जो संकल्प संतजनों के हृदय में, सुधीजनों के हृदय में आया है, यह पूर्णता को प्राप्त हो, ऐसा आशीर्वाद लेने के लिए यह दास आपके चरणों में आया है । सभी सन्तों ने मुझे आपके चरणों में भेजा है क्योंकि समग्र भारत की संत-चेतना इस मंगलमय अभियान में लगी है । इसलिए आपके चरणकमलों में यह प्रार्थना है कि जितने भी मानमन्दिर को जानने और मानने वाले लोग हैं अथवा इनसे सम्बन्धित जितने भी लोग हैं, पूज्य भैयाजी ! आप उन सभी को यहाँ से आदेशित करें कि आने वाली २७ अप्रैल को समस्त भारत की तहसीलों में जो कोई भी जहाँ कहीं भी हैं, वहाँ जाकर दिन में ११ बजे एक सामूहिक विनयपत्र हम सब देंगे, इस बात की आज्ञा आप यहाँ से देंगे । २७ अप्रैल को जो कार्यक्रम रखा गया है, इसमें एक और बात है कि गौमाता का संरक्षण और धर्मस्वरूप जो नन्दी (वृषभ) हैं, उनकी आतिथ्यता एवं राम-कृष्ण-महादेव आदि जो हमारे आराध्य देव हैं, उनका आशीर्वाद तथा आप सन्तों की कृपा और आम जनमानस की सहभागिता ही है । इस कार्यक्रम के पर्चे में किसी भी संस्था का नाम नहीं दिया गया है, किसी भी व्यक्ति का नाम नहीं दिया गया है, केवल और केवल गौमाता के संरक्षण में एवं उनकी ही छत्रछाया में यह अभियान चल रहा है । इस कार्यक्रम में किसी व्यक्ति का नाम नहीं है, केवल गौमाता के संरक्षण में ही यह कार्य होना है । श्रीबाबामहाराज ! आपके चरणों में यह प्रार्थना है कि आप इस अभियान को अपना पूरा आशीर्वाद प्रदान करें ।.....जय गोमाता ! जय गोपाल !! जय श्री राधेश्याम !!!"

श्रीजी संगीत विद्यालय का प्रथम वार्षिकोत्सव

माघ, शुक्ल, बसंत पंचमी के परम पावनमय दिवस में 'श्रीजी संगीत विद्यालय' की स्थापना परम पूज्य श्रीबाबामहाराज के विशेष अनुकम्पा व आशीर्वाद से उनकी परम कृपामयी सन्निधि में हुई है । इस वर्ष बसन्त पंचमी के दिन श्रीजी संगीत विद्यालय ने एक साल पूर्ण कर लिया है, इसलिए २३ जनवरी 'माघ, शुक्ल, पंचमी' को संगीत-कार्यक्रम के साथ बड़े धूमधाम से संगीत-विद्यालय का वार्षिकोत्सव रसमण्डप में मनाया गया, जिसमें भारत के सुप्रसिद्ध संगीत-कलाकारों ने अपनी गायन-वादन-नर्त्तन की प्रस्तुति की ।

श्रीबाबामहाराज की आराधना आरम्भिक जीवन से सरस संगीतमय गुणगान से ही ओतप्रोत (भरी हुई) है, जिनका सम्पूर्ण जीवन संगीतमयी आराधना के लिए समर्पित है । ऐसे परम संगीतज्ञ ब्रजाराधक बाबाश्री के बारे में कुछ भी बोलना सूर्य को दीपक दिखाने जैसा है । श्रीबाबामहाराज की हार्दिक इच्छा रहती है कि समस्त साधक-साधिकाएँ 'संगीत' की ही उपासना करें, इससे आराधना-शक्ति में सरसता आती है । नित्य संगीतमयी 'आराधना' करने से ब्रज की सच्ची सेवा होती है व सम्पूर्ण सृष्टि का परम मंगल होता है । इसीलिये 'संगीत-विद्या' को विशेष प्रोत्साहन देने के लिए ही श्रीबाबामहाराज ने 'श्रीजी संगीत विद्यालय' खुलवाया है । हम सब लोगों को भी संगीत अवश्य सीखना चाहिए । बड़े-बड़े रसिकों महापुरुषों ने तो यहाँ तक कहा है – **"कभी न गाया गीत विरह के, प्रीति स्वरों को क्या जानेगा । तारों की झनकार न झूमा, हृदय तार को क्या जानेगा ॥ पत्थर दिल जिसका फूलों की, कोमलता को क्या जानेगा । विष्ठा भोगों का कीड़ा जो, युगल प्रेमरस क्या जानेगा ॥"** वास्तव में संसार के विषय-भोगों से छूटने का व श्रीभगवान् की रसमयी भक्ति को प्राप्त करने का सबसे सरल व सरस साधन 'संगीतमय उपासना' ही है, जिसके द्वारा सहज ही अन्तःकरण परम पवित्र होकर रस रूपा भक्ति में लग जाता है । इसीलिये ब्रजभक्ति का तो प्राण ही सरस संगीतमय लीलागान है । अतः वास्तविक ब्रज-उपासक को संगीतमय सरस आराधना को ही अपना अभीष्ट साध्य बनाना चाहिए । क्योंकि 'संगीत' नाम सुनते ही हृदय में प्रेम-रस-माधुर्य भाव का संचरण होने लगता है, फिर भक्तिमय सरस संगीत के साक्षात् दर्शन-श्रवण से सरस भावों में मन निमज्जित होने लगता है । 'संगीत' साक्षात् 'श्रीजी' का ही स्वरूप है, अतः सम्पूर्ण श्रीब्रजभूमि भी संगीतमयी है, यहाँ का प्रत्येक रजकण सरस संगीतमय ब्रजलीलागान के रस से अभिसिंचित है । इसीलिये ब्रजवासियों के रोम-रोम में सहज ही संगीत-विद्या समाई हुई है । संगीतमय उपासना को देख-सुनकर ब्रजवासी बालक-बालिकाएँ अपने आप नाचने-गाने लगते हैं, इनके जन्मजात ही संगीत के संस्कार होते हैं । वास्तव में ब्रजमण्डल से ही सम्पूर्ण विश्व में संगीत प्रसरित (फैला) हुआ है । संगीतमय ब्रजप्रदेश की राजधानी (केन्द्रभूमि) श्रीबरसाना 'गह्वरवन धाम' है, जहाँ नित्य निरन्तर माधुर्यरसमय लीलागान होता रहता है । वर्तमान समय में परम पूज्य श्रीबाबामहाराज की सरस संगीतमयी श्रीराधाराधना द्वारा ब्रजभूमि का साक्षात् स्वरूप प्रकट हुआ है । श्रीराधामाधव युगल रसराज को संगीतमय आराधन ही अत्यन्त प्रिय है । जिस रसमयी आराधना के द्वारा ब्रजरसिक प्रेमीजन सहज ही श्रीप्रियाप्रियतम को आकर्षित कर प्रेमपाश में बाँध लेते हैं । जिसका जीवन संगीतमय रसोपासना से वंचित है, उसको संगीत के रसिकजन धिक्कारते हैं; इसी भाव से भावित एक श्लोक को लिखकर आचार्य श्रीचाणक्यजी ने कहा – **"येषां श्रीमद्यशोदासुत पदकमलयोः नास्ति भक्तिर्नराणाम्, येषामाभीरकन्या प्रियगुणकथने नाऽनुरक्ता रसज्ञाः । येषां श्रीकृष्णलीला-ललितरसकथा सादरौ नैव कर्णौ, धिक्तां धिक्तां धिगेतान् कथयति सततं कीर्तनस्थो मृदङ्गः ॥"**

वस्तुतः रसमयी भक्ति के बिना मानव-जीवन निरर्थक ही है, सच्ची सार्थकता तो सरस लीलाओं के कथन-श्रवण व गुणगान में ही है ।

सनातन-संस्कृति की भूमि 'भारतवर्ष'

हमारे देश भारतवर्ष का संविधान २६ जनवरी १९५० को लागू हुआ था, जिसे प्रतिवर्ष 'गणतंत्र दिवस' के रूप में मनाते हैं; ये ससत्तर (७७) वाँ 'गणतंत्र दिवस' है । 'गणतन्त्र' का शाब्दिक अर्थ है 'जनता का राज्य' । 'जन' शब्द का यदि भक्तिमयी दृष्टि से अर्थ किया जाए तो 'जन' माने 'भक्त' ही होता है । 'जनता का राज्य' अर्थात् भक्तों का शासन । वास्तव में देखा जाए तो सनातन संस्कृति में 'भक्तिमयी-शासन-व्यवस्था' सदा से रही है, यही वास्तविक व्यवस्था है और सदा रहने वाली है । जब-जब भी इस सनातनी व्यवस्था का ह्रास (नाश) हुआ है, तब-तब उसके संरक्षण-संवर्द्धन का कार्य स्वयं श्रीभगवान् या भक्तों ने ही किया है । इस 'सनातन भक्तिमय व्यवस्था' का पालन त्रेतायुग में स्वयं भगवान् श्रीराम ने भी किया है । जब प्रभु 'राजा रामचन्द्रजी' के रूप में विराजमान हुए हैं, तब समस्त जनता (नगरवासियों) व पूज्यनीय जनों को बुलवाकर सनातन भक्तिमयी व्यवस्था को उचित रूप से चलाने के लिए कहा था –

"सुनहु सकल पुरजन मम बानी । कहउँ न कछु ममता उर आनी ॥ नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई ।
सुनहु करहु जो तुम्हहि सुहाई ॥ सोइ सेवक प्रियतम मम सोई । मम अनुसासन मानै जोई ॥
जौं अनीति कछु भाषौं भाई । तौ मोहि बरजहु भय बिसराई ॥"

गणतंत्र दिवस के अवसर पर हम सब लोग यही आकांक्षा करते हैं कि भारतवर्ष में वही सनातनी व्यवस्था के अनुसार भक्तिमय शासन की सत्ता चले ..... । हमारा देश भारतवर्ष भक्ति का केन्द्र है, इसीलिये यहाँ संत-भक्तजनों व स्वयं श्रीभगवान् के अवतार किसी न किसी रूप में होते रहते हैं । साक्षात् श्रीभगवान् व उनके प्रेमाराधकों की अवतरित लीलाभूमि होने से ये सम्पूर्ण विश्व की वन्दनीय बन गई है । वास्तव में भारतभूमि से समस्त लोगों को एक विशेष भक्तिमयी व क्रान्तिकारी प्रेरणा मिलती है । 'भारत' अर्थात् जो नित्य भक्तिमय प्रकाश में निरन्तर निरत है, उसे 'भारत' कहते हैं । 'भारतवर्ष' भक्तिमय सूर्य है, जो अपनी भक्तिमयी किरणों से सम्पूर्ण विश्व को आलोकित (प्रकाशित) करता है । श्रीभागवतजी में लिखा है कि वही देश परम पवित्र, उत्तम व परम कल्याणकारी है; जहाँ भक्तजन निवास करते हुए नित्य निरन्तर श्रीहरि की आराधना करते हैं – 'स वै पुण्यतमो देशः सत्पात्रं यत्र लभ्यते ।' 'यत्र-यत्र हरेरर्चा स देशः श्रेयसां पदम् ।' ये समस्त सद्भाव भारत देश में ही यथार्थ रूप से घटित होते हैं । अब भारतवर्ष अपनी वास्तविक संस्कृति में जाग रहा है, धीरे-धीरे सनातन संस्कृति का झंडा सम्पूर्ण विश्व में लहराएगा । अब सनातन धर्म की बेल बढ़ती जाएगी; यही भाव हमारे बड़े-बड़े संत-महापुरुषों ने भी अपनी वाणियों में कहकर भविष्यवाणी की है, जैसे – श्रीसूरदासजीमहाराज ने अपने एक पद में भविष्यवाणी करते हुए कहा है – **"रे मन धीरज क्यों न धरै । संवत दो हजार के ऊपर, ऐसा जोग परै ॥**
स्वर्ण फूल वन पृथ्वी फूलै, धर्म की बेल बढ़ै । सहस्त्र वर्ष लगि सतयुग व्यापै, सुख की दया फिरै ।
काल जाल से वही बचेगा, जो गुरु ध्यान धरै । सूरदास यह हरि की लीला, टारे नाहिं टरे ॥"

वस्तुतः भारत की भक्तिमय सनातन संस्कृति कभी भी पूर्ण रूप से विलुप्त नहीं होती है, केवल विधर्मियों के विद्रोह से छिप जाती है, अनुकूल समय आने पर पुनः अपने स्वरूप में प्रकट हो जाती है । आज वर्तमान में उसी समय का शुभारम्भ हो चुका है, जिसे महापुरुषजनों ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर पहले ही बता दिया था । अब लगभग हजार वर्ष तक सात्विकता रहेगी, सतयुग जैसे गुणधर्म रहेंगे । अब इस समय भारतीय शासन व्यवस्था भी सनातन संस्कृति की ओर आगे बढ़ रही है । हम सभी सनातन धर्मावलम्बियों को एक जुट होकर अपने भारतीय गौरव-गाथा को समझना व समझाना चाहिए । हम लोगों को अपने इस भारतीय गणतन्त्र दिवस के पावन अवसर पर अपनी भारतीय संस्कृति के

प्रत्येक अंग-प्रत्यंगों को समझते हुए व अपनी जीवन-शैली में अपनाते हुए सभी को इसी गौरवशालिनी संस्कृति के सनातन संस्कारों को अपनाने की प्रेरणा देनी चाहिए, तभी हम सच्चे सनातन धर्मावलम्बी बनकर वास्तविक भारत के भक्त बनेंगे। हम सबको अपनी संस्कृति के गौरव के संरक्षण-संवर्द्धन के लिए भारतीय वेश-भूषा (पहनावा), भारतीय भाषा, भारतीय शिक्षा-पद्धति, भारतीय वस्तु-पदार्थ इत्यादि का प्रयोग करना चाहिए। हम सभी सनातनी हिन्दू भाई-बहन सबसे पहले भारतीय ही हैं, इसलिए भारत माता के लिए हर तरह से सदैव समर्पित रहना ही सबसे पहला कर्त्तव्य है। आज हम सब लोग श्रीभारत माता के उन अमर वीर सपूतों को कोटि-कोटि नमन-वन्दन करते हैं जिन्होंने भारत माँ की रक्षा करते-करते अपने जीवन-प्राण को सदा के लिए बलिदान कर दिया है .....। ..... 'श्रीभारत माता' की .....जय हो ....।

श्रीबरसाने में अति सरसता का रहस्य

बाबाश्री के सत्संग 'श्रीराधासुधानिधि में धाममहिमा' (३०-१-१९९९) से संकलित

रंगीली होली के दिन बरसाने के श्रीजी मन्दिर में प्रतिवर्ष एक पद गाया जाता है, जिसमें यह वर्णन है कि ब्रज के अनेक गाँवों की गोपियाँ बरसाने में आयी हैं तथा पद के अंत में 'बरसाना' शब्द की व्युतपत्ति भी लिखी है। इस पद में बात यहाँ से शुरू होती है कि बरसाने में रस बरस रहा है। **'अति सरस बन्यो बरसानो जू।'** एक तो होती है सरसता परन्तु बरसाने में अति सरसता है – **"राजत रमणीक रवानो जू॥ वृषभानु गोप जहाँ राजै जू। कीरति जाकी जग गाजै जू॥"** पद की उपरोक्त पंक्ति में श्लेष अलंकार है, श्लेष अलंकार में एक शब्द के दो अर्थ हो जाते हैं। इस पंक्ति में कहा गया है कि जब से राधा पैदा हुई तब से उनकी मैया कीर्ति रानी सारे जग में गाज रही हैं, जिनकी बेटी राधा हैं, उनकी कीर्ति में क्या संदेह है ? कीर्ति की कीर्ति फैल गयी या वृषभानु की कीर्ति फैल गयी। **'जहाँ मणिमय मंदिर सोहै जू।'**

रंगीली होली के रसमय अवसर पर यशोदा जी बरसाने में आती हैं। वृषभानु महल में रानी कीर्ति के रनिवास में इस दिन बहुत अधिक हास-परिहास होता है। इस पद में इसका वर्णन है। यशोदाजी से बरसाने की गोपियाँ बात करती हैं, उनके साथ कृष्ण भी बैठे हैं। बड़ी सुंदर छवि है।

ब्रज में बरसाने-नन्दगाँव के बीच एक बहुत दिव्य सम्बन्ध है और यह परम्परा आज तक चल रही है। एक बार किसी व्यक्ति ने परम पूज्य संत श्रीप्रियाशरण बाबा महाराज से पूछा - क्या ब्रज में ऐसा कोई प्रत्यक्ष प्रमाण है, जिससे यह विश्वास हो जाये कि यहाँ राधारानी और श्रीकृष्ण हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण तो है आँखों से दिखायी देना और आँखों से कोई चीज दिखायी नहीं दे रही है। राधाकृष्ण के अवतार को तो हजारों वर्ष बीत गये, प्रत्यक्ष प्रमाण कुछ मालूम नहीं पड़ रहा है। इस प्रश्न का पूज्य श्रीप्रियाशरण जी महाराज ने बहुत सुन्दर उत्तर दिया क्योंकि वे बरसाने के सच्चे रसिक थे, इस भूमि के निष्ठा प्राप्त महापुरुष थे। प्रश्न करने वाले व्यक्ति से उन्होंने हँसते हुये कहा कि तुम्हारे पास अपने पिता के वास्तविक पिता होने का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण है ? शब्द प्रमाण से ही तो उन्हें पिता मानते हो, तुम्हारे कुटुम्ब वालों ने बताया, माता ने बताया कि तुम इनके पुत्र हो तब तुमने उन्हें अपना पिता माना। ऐसे ही तुमको समझना चाहिए कि वेद-शास्त्र, पुराणों में (सत्य वस्तु से सम्बन्धित) सभी बातें कही गयी हैं, उन पर तुम्हें विश्वास करना चाहिये, फिर भी मैं तुमको एक प्रत्यक्ष प्रमाण की बात भी बताता हूँ। आज भी बरसाने में रंगीली होली और राधाष्टमी के दिन लाखों लोग आते हैं। इसे तुम आँखों से स्वयं देखते हो। यही प्रत्यक्ष प्रमाण है। हजारों वर्षों से आज तक बरसाने-नन्दगाँव की परम्परा चल रही है कि राधारानी के विवाह के बाद से आज तक बरसाने की किसी बेटी का विवाह नन्दगाँव से नहीं किया गया। आज भी नन्दगाँव वाले जब बरसाने में आते हैं तो ससुराल के भाव से आते हैं और ससुराल के ही सम्बन्ध से परस्पर हास-परिहास होता है। नन्दगाँव वाले गाते हैं – **'बरसानो असल ससुराल, हमारो न्यारो नातो।'** असली ससुराल तो हमारी बरसाना

ही है । उसी भाव से आज तक बरसाने-नन्दगाँव का व्यवहार चल रहा है । सारी परम्परा आज तक वही चल रही है तो सोचो कि इसका क्या आधार है ? यही तो प्रत्यक्ष प्रमाण है ब्रज में राधा-कृष्ण के होने का, उस परम्परा को कोई तोड़ नहीं पाया । कलिकाल के प्रभाव से आधुनिक सभ्यता की अन्धी दौड़ के बावजूद भी बरसाने-नन्दगाँव के प्रेम सम्बन्ध का आज तक निर्वाह हो रहा है । श्रीराधिकारानी की लीला का प्रताप है कि आज भी साँकरीखोर की वार्धकी (बूढ़ी) लीला के दिन नन्दगाँव के ग्वालबाल आते हैं, वही भाव लेकर, नन्दलाला साँकरीखोर में ब्रजगोपियों को दधिदान के लिए रोकते हैं । सबसे बड़ी बात तो यह है कि यहाँ ब्रज में कृष्ण को कोई भगवान् नहीं मानता है । सम्पूर्ण विश्व से यहाँ एक अलग ही सृष्टि है, दिव्य धाम है, जहाँ भगवान् को भगवान् नहीं माना जाता, सम्बन्धी माना जाता है । यह शास्त्रसम्मत बात है और भगवान् से सम्बन्ध मानना ही सबसे बड़ी बात है । भगवान् को भगवान् मानने से ऊँची बात है कि हम उनको अपना सम्बन्धी मानें । कपिल भगवान् ने भी भागवत में माता देवहूति से कहा है कि यदि कोई मुझे अपना सम्बन्धी मान ले तो काल उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता है ।

न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे नङ्क्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः ।
येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम् ॥ (श्रीभागवतजी ३/२५/३८)

यहाँ भगवान् को भगवान् नहीं माना जाता, यही इस बरसाने की विशेषता है कि भगवान् को अपना सम्बन्धी माना जाता है कि कृष्ण हमारा दामाद (मेहमान) है । गाली-गलौज के साथ उनका सम्मान किया जाता है । यह भगवान् की पूजा है । यहाँ इस रूप में भगवान् की पूजा की जाती है, ऐसा यह बरसाना है । एक पद की पंक्तियाँ जाने कब से गायी जा रही हैं, जिसमें श्यामसुन्दर साँकरी खोर की दधिदानलीला में कहते हैं – **'ए हो दह्यो तो तुम लिये जाति कहाँ को ।'**

जिस दिन साँकरीखोर पर मटकी फूटती है, यह कड़ी आज भी गायी जाती है । चिकसौली से दही की मटकी आती है । नन्दलाल गोपी से पूछते हैं कि दही लेकर तुम कहाँ जा रही हो, यह दही तो मुझे दे जाओ । उत्तर में गोपियाँ इस प्रकार बोलती हैं, ऐसा नहीं कहतीं कि तुम भगवान् हो, ब्रह्म हो, लो महाराज, मटकी लेकर दही खा लो । भोग लगाकर हमें कृतार्थ कर दो । ऐसा कुछ नहीं है । यहाँ बरसाने में तो श्रीकृष्ण को सम्बन्धी माना गया है और वह बड़ा सरस सम्बन्धी है । इसलिए उसे गाली सुनायी जाती है, उसके साथ हास-परिहास किया जाता है । सम्बन्ध के अनुसार उनका ऐसा ही सम्मान होता है । दधिदान माँगने पर गोपियाँ कहती हैं – **'ए हो, ऐसो जो कहत मानो याही के बबा को ।'** ये तो ऐसे माँग रहा है जैसे दही इसके बाप का हो । विचार कीजिये, भगवान् की बरसाने में यह हालत है । भगवान् दही माँग रहा है तो यहाँ की गोपियाँ उससे कहती हैं कि क्या दही तेरे बाप को है । बाप ही नहीं, बाप के बाप, बाबा को है ।

यह कैसी भूमि है ? यह ऐसी भूमि है, जिसमें वह परब्रह्म परमेश्वर, जो विश्व में सर्वोच्च, सर्वपूज्य था, इस बात को हटाकर – 'यह तो हमारा सम्बन्धी है' - एक यही भाव रह गया । इस बात को आप ऐसे समझिये कि जब भारत का राष्ट्रपति २६ जनवरी को देश की राजधानी में गणतन्त्र दिवस समारोह में राष्ट्र प्रमुख के रूप में जाता है तो उनकी पत्नी भी साथ में होती हैं । पति राष्ट्रपति है तो पत्नी भी उनके साथ बैठती है, क्योंकि उनका सम्बन्ध है । पत्नी चाहे कितनी भी अयोग्य हो, अनपढ़ हो किन्तु सम्बन्ध के कारण उसका भी सम्मान होता है । अतः संसार में भी देखा जाता है कि सम्बन्ध के कारण मनुष्य पूज्य बन जाता है । इसी प्रकार जब भगवान् के साथ मनुष्य का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तो काल की क्या हिम्मत है, जो उसका कुछ बिगाड़ सके । काल तो उधर झाँक ही नहीं सकता । (भागवत - ३/२५/३८) जिसका सम्बन्ध भगवान् से जुड़ गया, कोई भी सम्बन्ध जुड़ गया चाहे भगवान् सखा बन गया, पुत्र बन गया, गुरु बन गया, सुहृद (नातेदार-रिश्तेदार) बन गया अथवा किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित हो गया । सम्बन्ध के कारण ही वृषभानु भवन में किसी उत्सव के समय, विशेषकर होलिकोत्सव में, श्रीकृष्ण यशोदा मैया के साथ बैठे हैं । बरसाने की गोपियाँ पहले तो यशोदाजी को वस्त्र आदि ओढ़ाकर, भेंट देकर सम्मान करती हैं, फिर पूछती हैं - यशोदारानी ! एक बात बताओ, आप हमारी नातेदार हो, इसलिए एक बात हम पूछती हैं - **'पति साधु परम तुम पायो जू ।'** आपके पति नन्दबाबा परम साधु

हैं, इस बात को सारा संसार जानता है कि नन्दबाबा चोर नहीं, छिनट्ट (परस्त्रीगामी) नहीं, वे तो परम सदाचारी और ब्रज के बड़े ही उदार दाता हैं परन्तु हमारा प्रश्न यह है कि **'यह पूत कहाँ ते जायो जू ।'** यह पुत्र आपको कहाँ से प्राप्त हुआ ?

अब प्रश्न ऐसा था कि यशोदाजी क्या कहतीं ? तब तक बरसाने की गोपियों ने और कहा कि हमने आपसे ऐसा इसलिए पूछा क्योंकि **'यह मिलै न कुलै तिहारे जू । याके रंग रूप निहारो जू ॥'** इस बालक का रंग तो देखो । तुम तो गोरी हो, नन्द बाबा भी गोरे हैं । आप दोनों का रंग-रूप देख लिया हमने किन्तु आपके बालक का रंग कैसा है ? यह सब देखकर कहना पड़ता है कि 'यह मिलै न कुलै तिहारे जू ।' तब तक एक अन्य गोपी बोली - 'औरऊ शंका एक आवै जू ।' यशोदाजी ! आप बुरा मत मानना कि ऐसी बात ये बरसाने वाली क्यों पूछ रही हैं ? आप स्वयं ही सोच लो – **'जब गर्ग तिहारे आयो जू ।'** हमने सुना है कि जब आपके यहाँ कृष्ण का जन्म हुआ तो गर्ग ऋषि आये नामकरण करने के लिए । यह बात भागवत और अन्य पुराणों में लिखी है कि गर्गजी कृष्ण का नामकरण करने नन्द बाबा के यहाँ पधारे थे । उस समय गर्गजी ने कहा था – **आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः । शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥**

प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः । वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥ (श्रीभागवतजी १०/८/१३, १४)

इस समय यह कृष्ण है कृष्णता को प्राप्त करने के कारण और कभी इसने वसुदेव के यहाँ भी जन्म लिया था, इसलिए इसे लोग वासुदेव भी कहेंगे । इसीलिए बरसाने की गोपियाँ यशोदाजी से कहती हैं कि जब गर्गजी आपके यहाँ आये तो उन्होंने कहा था कि यह वसुदेव का पुत्र है । गर्गऋषि तो त्रिकालज्ञ हैं, तीनों कालों की जानने वाले हैं, जिन्होंने ज्योतिषशास्त्र की रचना की और जिनकी अद्भुत महिमा है । आचार्यों ने इस बात को लिखा है कि जो उद्धवजी की इच्छा थी – **आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।** (श्रीभागवतजी १०/४७/६१)

मुझे ब्रज की लता बना दो, जिससे गोपियों की चरण रज मिल जाये । उद्धवजी की यह इच्छा पूरी हुई गोवर्धन में, जहाँ उद्धवकुण्ड के पास वे लता के रूप में आज भी विराजमान हैं । भागवत में उद्धवजी के इस प्रसंग का वर्णन स्कन्द पुराण में किया गया है कि श्रीकृष्ण के स्वधामगमन के बाद द्वारका की रानियाँ जब ब्रज में आयीं तो यमुना जी के कहने से गोवर्धन में कुसुमसरोवर के निकट लता-पता के रूप में उद्धव जी से उनकी भेंट हुई । आचार्यों ने यह बताया कि भागवत में उद्धवजी की अभिलाषा लता बनने की जो पूर्ण हुई, उसका स्कन्द पुराण में वर्णन है तो आचार्य ही ऐसे होते हैं जो एक पुराण का सम्बन्ध दुसरे पुराण से जोड़ते हैं । हम लोग इसे नहीं समझ सकते क्योंकि हम लोग तो अज्ञानी हैं । इसी प्रकार भागवत में ब्रह्माजी ने श्रीकृष्ण की स्तुति करते समय यह प्रार्थना की कि मुझे ब्रज में तिरछी योनि में जन्म मिल जाये । तिरछी योनि का अर्थ है 'जड़योनि' । भागवत में ब्रह्माजी की इस प्रार्थना का रहस्य पद्म पुराण और वाराह पुराण में खोला गया है । श्रीवाराहपुराण में लिखा है – **'पुराकृतयुगस्यान्ते ब्रह्मणा प्रार्थितो हरिः । ममोपरि सदा त्वं हि रासक्रीडां करिष्यसि ॥'** सतयुग में जब ब्रह्माजी को पता चला कि श्यामसुन्दर गोपियों के साथ ब्रज में रस की वर्षा करेंगे तो ब्रह्माजी ने पहले से रिजर्वेशन (आरक्षण) करा लिया जैसे किसी को बम्बई से मथुरा आना है तो बहुत पहले से ही वह रिजर्वेशन रेलगाड़ी के लिए करा लेता है ताकि ऐन वक्त पर रिजर्वेशन मिले कि न मिले । सतयुग के अन्त में ब्रह्माजी ने भगवान् से प्रार्थना की । सतयुग के कई लाखों वर्षों बाद द्वापर के अन्त में श्रीकृष्ण का अवतार होने को था । सतयुग १७ लाख वर्षों के लगभग होता है, त्रेता १२ लाख वर्षों के आसपास होता है, द्वापर लगभग आठ लाख वर्ष का होता है । सतयुग के अन्त में ब्रह्माजी ने तपस्या की, उनके सामने भगवान् कृष्ण प्रकट हुये और पूछा - ब्रह्माजी ! आप क्या चाहते हैं ? ब्रह्माजी बोले – हे प्रभो ! द्वापरान्त में ब्रज में आपकी रसमयी लीला होने वाली है, मैं भी उसका दर्शन करना चाहता हूँ । भगवान् हँसने लगे क्योंकि ब्रह्माजी जिस रासलीला का रसास्वादन करना चाह रहे थे, उसमें पुरुष का तो अधिकार ही नहीं है, महादेवजी को भी इसके लिए गोपी बनना पड़ा । ब्रह्माजी ने श्यामसुन्दर से यह भी कहा कि केवल आप ही नहीं बल्कि जितनी भी गोपिकायें हैं, उन सबके चरण मेरे ऊपर पड़े । **'सर्वाभिर्ब्रजगोपीभिः प्रावृड्काले कृतार्थकृत ।'**

किसी पुराण में लिखा है कि एक बार ब्रह्माजी ने साठ हजार वर्षों तक तपस्या की परन्तु उन्हें गोपियों की चरणरज नहीं मिली । जब ब्रह्माजी ने समस्त ब्रज गोपिकायों की चरणरज माँगी तो श्यामसुन्दर चक्कर में पड़ गये और सोचने लगे कि गोपिकायें तो राधारानी की कायव्यूह रूपा हैं, यह विभाग तो श्रीजी का है, ब्रह्मा ने मुझसे ये क्या माँग लिया, और कुछ माँगते तो मैं दे देता, सख्यरस पाना चाहते तो मैं नन्दगाँव में उन्हें बसा देता किन्तु ये तो रास में प्रवेश करना चाहते हैं और सहचरियों की चरणरज के अभिलाषी हैं । ब्रह्माजी ने वरदान माँगते समय सोचा था कि यदि मैं प्रभु से कहूँ कि आप मुझे राधारानी का दर्शन करा दो तो यह ठीक नहीं है लेकिन ऐसा कुछ दाँव मारना चाहिए कि उसमें सब कुछ एक साथ आ जाये । श्यामसुन्दर ने कहा – ब्रह्माजी ! आप ब्रज में चले जाइए । ब्रह्माजी सोचने लगे कि ब्रज तो बहुत बड़ा है । गोवर्धन भी ब्रज है, चीरघाट भी ब्रज है, नन्दगाँव, कामवन, वृन्दावन, गोकुल आदि सब ब्रज ही है, मैं कहाँ जाऊँ ? श्यामसुन्दर बोले – आप बरसाना जाओ । **'ततो ब्रह्मन् ब्रजं गत्वा वृषभानुपुरे स्थिताः ।'** भगवान् समझ गये कि ब्रह्माजी समस्त गोपियों की चरणरज पाना चाहते हैं तो वह राधारानी की कृपा के बिना सम्भव नहीं है । श्रीजी की कृपा के बिना तो किसी एक गोपी की चरणरज भी नहीं मिल सकती है । इसीलिए श्यामसुन्दर ने कहा – 'ब्रह्माजी ! आप वृषभानुपुर (बरसाना) चले जाओ और वहाँ पर्वत बन जाना ।' श्यामसुन्दर ने बड़ी चतुराई की बात बता दी क्योंकि बरसाने में तो श्रीजी के सामने हाजिरी देने सारे ब्रज की गोपिकायें आयेंगी । बरसाना ऐसा स्थान है, जहाँ बिना बुलाये समस्त गोपिकाएँ पहुँच जाती हैं, बिना निमन्त्रण के स्वयं श्यामसुन्दर वहाँ पहुँच जाते हैं ।

इस प्रकार भगवान् के आदेश से ब्रह्माजी बरसाने में आकर पर्वत बन गये और इस पर्वत का नाम है ब्रह्माचल पर्वत । इसीलिए श्रीजी मन्दिर के सिंहपौर पर ब्रह्माजी की एक प्रतिमा भी स्थापित है । यहाँ पर्वत बनने पर ब्रह्माजी को श्रीजी और समस्त गोपिकाओं की चरणरज प्राप्त हुई, यह वाराह पुराण और पद्मपुराण में वर्णित है । 'बरसाना' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है कि वर्षाणा (जहाँ रस की सदा वर्षा होती है) का अपभ्रंश ही 'बरसाना' हो गया । अस्तु, जब रंगीली होली के अवसर पर बरसाने में यहाँ की गोपियों के द्वारा यशोदाजी से पूछा गया कि आप और नन्दबाबा गौर वर्ण के हैं तो आपका पुत्र साँवरा कैसे हो गया ? छोटे से कन्हैया भी अपनी माँ के साथ बैठे नीचे मुँह कर मुस्कुराने लगे । मैया पर गाली पड़ रही है और श्यामसुन्दर मुस्कुरा रहे हैं, ऐसा है यह बरसाना । इसीलिए रसिक महापुरुषों ने गाया – **'यह रस बरसै बरसानो जू, बिनु कुँवरि कृपा को जानै जू ।'** अंत में रसिकजन कहते हैं कि हमने इस पद में सम्बन्धियों की लीला गाई है, कृष्णलीला नहीं गाई है और इसका फल यह है कि हमें ब्रजवास मिल गया । ब्रजलीला में सम्बन्धी गोपी-ग्वाल कृष्ण से बड़े हैं । **'कीरति-जसुमति जस गायो जू ।'** इस पद को गाने का फल क्या है ? **'ब्रजवास माधुरी पायो जू । अति सरस बस्यो बरसानो जू । राजत रमणीक रवानो जू ॥"** पुराणों में यह भी वर्णन मिलता है कि बरसाने का एक नाम है 'बरसानु', 'सानु' का अर्थ है पर्वत की चोटी । बरसाने के ब्रह्माचल पर्वत की चोटी सारे ब्रज में सबसे सुन्दर और मीठी है । यद्यपि नन्दगाँव में शिवजी भी नन्दीश्वर पर्वत बने हैं, इसी प्रकार गिरिराज गोवर्धन हैं तथा बरसाने के आसपास सखीगिरि पर्वत है । आदिबद्री में रोहिताचल, नर-नारायण, गन्धमादन आदि बहुत से पर्वत एक साथ हैं परन्तु जो सुन्दरता, जो मिठास बरसाने के ब्रह्माचल पर्वत की चोटी में है, यहाँ के दृश्य में है, वह ब्रज में अन्यत्र कहीं नहीं है । इसीलिए बरसाने का एक नाम है 'बरसानु' ।

श्रीहितहरिवंश महाप्रभु के राधावल्लभ सम्प्रदाय के अनन्य रसिक आचार्य चाचा वृन्दावनदासजी के द्वारा रचित एक ग्रन्थ है – 'ब्रजप्रेमानन्द सागर ।' इस ग्रन्थ में ब्रह्माचल पर्वत पर हुई एक लीला का वर्णन है कि दीपावली के अवसर पर किशोरी जी वृषभानु महल के सिंहपौर पर बैठी हुई हैं और उनके साथ ललिता, विशाखा आदि अष्ट सखियाँ भी बैठी हैं । इन अष्ट सखियों में भी प्रत्येक की अलग-अलग अष्ट सखियाँ हैं । इस प्रकार सम्पूर्ण सखी परिकर श्रीजी के साथ विराजित है । रात के समय सखियाँ श्रीजी से कहती हैं – 'आप पहचानो, ये कौन-कौन से गाँव दिखाई दे रहे हैं ?' दीपावली के अवसर पर हर गाँव में प्रत्येक घर में दीपक जल रहे हैं । सखियों के पूछने पर श्रीजी कहती हैं – वह

गिरिराजजी है, वहाँ की दीप ज्योति चमक रही है । वह वृन्दावन है । ब्रह्माचल पर्वत की शिखर से वृन्दावन तक दिखाई पड़ रहा था । अनेक गाँवों को पहचानते हुए श्रीजी कहती हैं – यह 'सहार' है । (सहार नन्द बाबा के भाई उपनन्द जी की राजधानी है) । बरसाने में इतने अधिक स्थल हैं कि यहाँ के रहने वाले भी उन्हें नहीं जानते हैं । बहुत कम लोग ही जानते हैं ।

निष्किञ्चन भक्त की रहनी

बाबाश्री के सत्संग (३/८/२००६) से संकलित

श्रीमद्भागवत में एक बड़ा ही सुन्दर श्लोक है, जिसके भाव हृदय में आने पर 'निष्किंचना भक्ति' आ जाती है ।

धर्मार्थमपि नेहेत यात्रार्थं वाधनो धनम् । अनीहानीहमानस्य महाहेरिव वृत्तिदा ॥ (श्रीभागवतजी ७/१५/१५)

धर्म करने के लिए भी धन मत चाहो । फिर क्या करें ? यही तो मुख्य सिद्धान्त है । सारी गीता का भी यही रहस्य है कि कामना रहित कर्म करो । कामना युक्त कर्म करने से धर्म कमजोर हो जाता है । गीता पर भाषण तो हम जैसे लोग बहुत करते हैं परन्तु वास्तव में गीता को समझना बहुत कठिन है । कामना रहित कर्म कैसे किया जाए ? **'नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।'** कर्म हो गया तो कोई प्रसन्नता नहीं होनी चाहिए और नहीं हुआ तो कोई खिन्नता नहीं होनी चाहिए । इससे क्या होगा ? **'न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥'** (श्रीगीताजी ३/१८) किसी प्राणी की ओर तुम्हें देखना नहीं पड़ेगा । श्रीबाबामहाराज बताते हैं कि किसी धाम-सेवक को अपने कार्य में बहुत सफलता मिली तो उसने मुझसे कहा कि इस बात को अभी किसी से मत कहियेगा । मैंने उनसे कहा कि यह सफलता आदि कुछ नहीं है, इसके आगे की सोचो । मेरी बात को सुनकर वे घबरा गये और बोले कि मुझे पता था कि बाबा के पास पहली चोट यही मिलेगी । पहली चोट यही है कि यदि हम कार्य में सफलता मिलने पर प्रसन्न हो गये तो समझो कि गीता के सिद्धान्त से गिर गये । हमें किसी धार्मिक कार्य के लिए एक करोड़ रुपये मिल गये और हम थोडा भी प्रसन्न हुए तो परमार्थ समाप्त हो जायेगा, ज्ञान-वैराग्य आदि नष्ट हो जायेंगे । **"समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।**

तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥" (श्रीगीताजी १४/२४)

गुणातीत पुरुष दुःख-सुख को समान मानता है, मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण में समान भाव रखता है, प्रिय एवं अप्रिय को एक सा समझने वाला तथा अपनी निन्दा-स्तुति में भी समान भाव रखता है । मान-अपमान में, लाभ-हानि में यदि समान नहीं है तो उसका ज्ञान नष्ट हो गया, उसका परमार्थ शून्य हो गया । जिस प्रकार बटलोई में चावल को पकाते समय देखते हैं कि चावल पक गया कि नहीं तो केवल एक चावल की ही जाँच करने पर पता चल जाता है । इसी प्रकार हर स्थिति में जो सम अवस्था में रहता है, उससे पता चल जाता है कि यह गुणातीत पुरुष है । इसके लिए अलग से बोलने की आवश्यकता नहीं रहती है । लाभ-हानि और मान-अपमान के प्रति यदि हम समान भाव नहीं रखते हैं तो हमारा अध्यात्म समाप्त हो गया, एक क्षण में ही समाप्त हो जाता है । इसीलिए उस प्रसिद्ध धाम सेवक की सारी उपलब्धियों को मैंने गीता के इस सिद्धान्त के आधार पर व्यर्थ सिद्ध कर दिया । इसमें एक मिनट भी नहीं लगा क्योंकि आदमी चढ़ता कठिनाई से है किन्तु गिरने में समय नहीं लगता । अतः भगवान् ने गीता में कहा –

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् । स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ॥ (श्रीगीताजी ५/२०)

प्रिय वस्तु प्राप्त करके तुम प्रसन्न हो गये तो आध्यात्मिक रूप से समाप्त हो गये । तुम्हारा सारा ज्ञान नष्ट हो गया । इसी तरह जरा सी बात पर उद्वेग हो गया, वह बात अप्रिय लगी तो तुम्हारा ज्ञान समाप्त । केवल तुम्हारे शरीर का ढाँचा मात्र ही है, भीतर आध्यात्मिक चेतना नहीं है । वह मनुष्य मर गया चाहे साधु हो अथवा कोई भी हो । मनुष्य वस्त्र बदलने से, वेष परिवर्तन करने से साधु नहीं बनता है । मन की स्थिति में सुधार नहीं हुआ तो भले ही वह साधु अथवा गृहस्थ है किन्तु आध्यात्मिक रूप से मृत्यु को प्राप्त हो गया । भक्ति क्या है, इसे अच्छी तरह समझो ।

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा । जोग न मख जप तप उपवासा ॥

भक्ति में कुछ प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है । कोई कहता है कि मैं इतने लाख नाम जप प्रतिदिन करता हूँ किन्तु संसार में देखो तो बनिया अर्थात् एक व्यापारी भी अपनी दुकान पर बैठकर माला से खूब जप करता रहता है किन्तु वह भक्ति नहीं है । मख यानि यज्ञ । संसार में बड़े-बड़े यज्ञ होते रहते हैं, कुछ यज्ञों में करोड़ों रुपये तक खर्च हो जाते हैं किन्तु ये सब भक्ति नहीं है । इस बात को रामचरितमानस में भगवान् कह रहे हैं । कोई मनुष्य नहीं कह रहा है । हम लोग साधारण सा यज्ञ करके बड़ा गर्व करने लगते हैं कि हमने यज्ञ में इतना खर्च किया । भगवान् राम के मतानुसार तो तुमने कुछ नहीं किया, तुमने केवल पाखण्ड किया । भक्ति के विरुद्ध काम किया, दुनिया में एक दुकान लगायी । इसको भक्ति नहीं कहते हैं । कोई कहता है कि मैंने निर्जला उपवास किया । यह भी भक्ति नहीं है । भक्ति क्या है ?

सरल स्वभाव न मन कुटिलाई । जथा लाभ संतोष सदाई ॥ (श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड – ४६)

स्वभाव की सरलता ही भक्ति है; मन की कुटिलता अर्थात् तिकड़म नहीं कि कैसे दूसरे का पैसा खींचें, यह कुटिलता है । भक्ति है – 'यथा लाभ संतोष सदाई ।' 'यथा लाभ संतोष' का अभिप्राय है कि मृत्यु हो रही है, तब भी संतुष्ट है, बीमार है तब भी सन्तुष्ट है, भूखा है तब भी सन्तुष्ट है, सुदामा की तरह दरिद्रता होने पर भी सन्तुष्टि है । इसको भक्ति कहते हैं और इसके विपरीत हम साधु बनकर भी यदि सोचते हैं कि हमें यह प्राप्ति हो जाए, अमुक वस्तु की उपलब्धि हो जाये, धन मिल जाए तो यह गलत बात है । भागवत के अनुसार धर्म के लिए भी धन की इच्छा मत करो । **'धर्मार्थमपि नेहेत यात्रार्थं वाधनो धनम् ।'** धर्म के लिए भी धन की इच्छा करोगे तो तुम्हारी भक्ति खण्डित हो जायेगी । **'मोर दास कहाइ नर आसा । करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा ॥'** मनुष्यों की ओर आशा भरी दृष्टि से देखने पर भक्ति समाप्त हो जाएगी । भगवान् पर विश्वास तो वहाँ है ही नहीं, केवल ढोंग-पाखण्ड चल रहा है । हम साधु बनकर लोगों से आशा कर रहे हैं कि यह धनी आदमी आया है तो कुछ धन देगा, कुछ भेंट देगा । अब अमुक व्यक्ति आया है तो मेरी कुछ सेवा करेगा । **"बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई । एहि आचरन बस्य मैं भाई ॥"** भगवान् कहते हैं कि मैं अधिक क्या कहूँ, मुझे वश में करने का यही एक उपाय है । तुम कामना लेकर इधर जाओ, उधर जाओ, लोगों से याचना करो, इससे भगवान् वश में नहीं होंगे । **"बैर न बिग्रह आस न त्रासा । सुखमय ताहि सदा सब आसा ॥ अनारंभ अनिकेत अमानी । अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी ॥ प्रीति सदा सज्जन संसर्गा । तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा ॥"** ये है भक्ति का ठोस काम । यदि ठाकुरजी की सेवा के लिए भी धन-संग्रह के बारे में हम सोचते हैं तो यह गलत है । मन्दिर के लिए लोगों से धन लेने के बारे में हम सोचें, वह भी गलत है । ठाकुरजी का मन्दिर है, उनका मकान है, उनका धाम है, वह इसमें आग लगायें, चाहे बिगाड़ें । यदि उनकी इच्छा मन्दिर बनाने की होगी तो हम नहीं रोक सकते हैं और हम नहीं रोक पा रहे हैं क्योंकि ठाकुरजी की इच्छा है । रोक भी सकते हैं, यदि हम डंडा लेकर खड़े हो जाएँ तो जबरन यहाँ ट्रैक्टर-ट्रॉली अथवा ट्रक चढ़कर नहीं आ जायेंगे लेकिन हम रोकते इसलिए नहीं हैं क्योंकि यह मान मंदिर ठाकुरजी का घर है । इस बात को समझने के लिए सनातन गोस्वामीजी का उदाहरण है । वे वृन्दावन में रहते थे और उनके इष्ट मदन मोहन जी श्रीविग्रह के रूप में मथुरा में रहते थे । जैसे मान मन्दिर की सीढ़ियाँ हम नहीं बनवाना चाहते थे किन्तु फिर भी किसी ने बनवा दीं, हम चाहते तो इसके लिए कड़ी प्रतिक्रिया व्यक्त कर सकते थे कि तुमने मेरी इच्छा के विपरीत कार्य क्यों किया परन्तु हम रोक नहीं सके, इसको सनातन गोस्वामी जी के उदाहरण से समझा जा सकता है । उस समय उनके इष्ट ठाकुर मदन मोहन जी अर्चा-विग्रह के रूप में मथुरा में एक चौबे परिवार की विधवा अनाथ स्त्री के पास रहते थे । वह बूढ़ी हो गयी थी और मदन मोहन जी के समक्ष दिन-रात रोया करती थी, उनसे कहती थी कि मेरी मृत्यु के पश्चात् तेरी सेवा कौन करेगा ? सनातनजी उन दिनों भिक्षा माँगने के लिए वृन्दावन से मथुरा जाया करते थे क्योंकि तब वृन्दावन एक सघन वन था । हम जैसे लोग तो बड़ी सुख-सुविधा के साथ रह रहे हैं, ऐसी स्थिति में भजन क्या करेंगे ? हम लोगों के पास शयन करने के लिए पलंग है, गद्दा है, क्या भजन इस तरह किया जाता है ? भजन तो रूप-सनातन आदि महापुरुषों ने किया था । सनातन जी भिक्षा माँगने के लिए

वृन्दावन से नित्य ही पैदल मथुरा जाते थे और भिक्षा में केवल आटा माँगते थे तथा उसकी सूखी अंगा बाटी बनाकर खा लेते थे । हम लोग तो रोटी के साथ साग भी खाते हैं । ब्रज में भिक्षा करने जाओ तो दूध मिलता है और खाने-पीने के लिए बहुत कुछ मिलता है । इस तरह के दृष्टान्त दिए जाने पर आजकल के यतियों को अप्रसन्नता का अनुभव होता है जबकि मेरा अभिप्राय यह होता है कि वे महापुरुष जिस ऊँचाई पर पहुँचे, वहाँ हम लोग नहीं पहुँच सकते हैं ।

अस्तु, जब सनातन जी मथुरा में वृद्धा विधवा के घर पहुँचे तो उन्होंने बाहर से ही मदन मोहन जी का दर्शन किया । अर्चाविग्रह में ही सनातन जी को मदन मोहन जी के साक्षात् रूप का दर्शन हुआ । उस दिव्य रूप को देखकर सनातन जी भाव विह्वल होकर रोने लगे । उसी समय वृद्धा वहाँ आई । उसने देखा कि एक साधु मेरे द्वार पर खड़ा होकर मेरे मदन मोहन का दर्शन कर रहा है । वृद्धा का ठाकुरजी के प्रति वात्सल्य भाव था । वह सोचने लगी कि यह साधु इतनी देर से मेरे दरवाजे पर खड़ा होकर मेरे लाला को देख रहा है, क्या यह मेरे लाला को नजर लगायेगा ? सनातन जी ने उस वृद्धा से कहा – 'मैया ! अपने इस लाला को मुझे दे दो ।' मैया बोली – 'अरे, अब मैं समझ गयी । तुझे मेरे मदन मोहन ने ही भेजा है । मैं प्रतिदिन इससे कहती थी कि मेरे मरने के बाद तेरी सेवा कौन करेगा ? तू इसे ले जा और इसकी प्रेम से सेवा करना । अब मैं चैन से मरूँगी ।' सनातन जी मदन मोहन जी के अर्चा विग्रह को वृन्दावन में ले आये । उस समय वे यमुना किनारे कालिय दह के निकट आदित्य टीला पर रहते थे । वहाँ कोई मन्दिर नहीं था । आदित्य टीले पर ही सनातन जी ने मदन मोहन जी को विराजमान कर दिया । प्रतिदिन की भाँति सनातनजी भिक्षा में आटा माँगकर लाये और अंगा बाटी बनाकर मदन मोहन जी के सामने रख दी । मदन मोहन जी ने सनातन जी से कहा – 'आपने सूखी अंगा बाटी मुझे खाने के लिए दे दी । इसके साथ नमक भी तो रखा करो ।' ठाकुरजी की इच्छानुसार अगले दिन सनातन जी भिक्षा में आटा के साथ नमक भी माँग लाये । हालाँकि ऐसा करना उन्हें अच्छा नहीं लगा क्योंकि वे तो महाविरक्त थे । विरक्त महापुरुष के लिए जिह्वा के स्वाद से तो कोई प्रयोजन ही नहीं होता । वैसे भी भूख लगने पर पेट का गड्ढा भरने के लिए रूखा-सूखा जो भी मिले उसी से उदर पूर्ति कर लेनी चाहिए । जितना त्याग से रहोगे, उतना ही काम-क्रोध आदि विकारों से बचे रहोगे । प्रतिदिन हलुआ-पूड़ी आदि जिह्वा को प्रिय लगने वाले व्यंजन खाओगे तो कामादि विकार अवश्य ही सतायेंगे । इच्छापूर्ण स्वादिष्ट भोजन से तो मनुष्य का पतन अवश्य ही होता है चाहे तुम साधु बन जाओ अथवा उससे भी अधिक उच्च स्तर पर पहुँच जाओ । यदि एक तरफ तुम्हारी इच्छा स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ के रसास्वादन की होती है, मीठा-नमकीन आदि खाने की होती है तो दूसरी इच्छा भोग की उत्पन्न होगी क्योंकि मन की गति ऐसी ही है ।

इधर सनातन गोस्वामीजी ने जब मदनमोहनजी को अंगा बाटी के साथ नमक का भोग लगाया तो उन्होंने कहा कि अंगा बहुत कड़ा है, खाते समय मेरे गले के नीचे नहीं उतरता है, इसलिए इसमें घी भी चुपड़ दिया करो । ठाकुरजी की यह बात सुनकर सनातन जी को बहुत बुरा लगा क्योंकि पहले तो वे भिक्षा में केवल आटा माँगकर लाते थे परन्तु अब मदन मोहन जी की आज्ञानुसार उनको न चाहते हुए भी नमक भी माँगकर लाना पड़ा और अब तो ठाकुरजी घी की माँग करने लगे । उनकी इस नई फरमाइश को सुनकर सनातनजी ने कहा – 'पहले आपने अंगा बाटी के साथ नमक लाने को कहा, इस समय आप उसमें घी लगाने के लिए कह रहे हैं, आगे चलकर आप मीठा खाने की कहेंगे, फिर माखन-मिसरी लाने के लिए कहेंगे, मैं एक विरक्त साधु हूँ । आपके खाने के लिए बढ़िया-बढ़िया पदार्थ अब मैं कहाँ से लाऊँगा । मेरी सामर्थ्य नहीं है आपकी इच्छानुसार स्वादिष्ट पदार्थों का भोग लगाने की ।' सनातन जी की बात सुनकर मदन मोहन जी बोले – 'तब तो क्या मैं अपने भोग-राग का प्रबन्ध स्वयं ही कर लूँ ?' सनातन जी ने कहा – 'हाँ, कर लीजिये ।' ठाकुरजी बोले – 'आपको कोई आपत्ति तो नहीं होगी ?' सनातनजी – 'मुझे क्यों आपत्ति होगी ? आपको जैसा अच्छा लगे, वैसा कीजिये । आप खीर खाइये, मालपुआ खाइये, जो अच्छा लगे खाइये क्योंकि आप तो सर्वभोगी हैं ।' सनातनजी की सहमति प्राप्त होते ही ठाकुरजी ने अपने भोग-राग की व्यवस्था की । मुल्तान का एक व्यापारी था । वह नदी के जहाज के द्वारा व्यापार करता था । उस समय यमुनाजी का जल अगाध था । मुल्तान निवासी व्यापारी

रामदास कपूर यमुना नदी के जलमार्ग से अपने जहाज द्वारा व्यापार करता था । एक बार जहाज के द्वारा व्यापार करता हुआ वह वृन्दावन पहुँचा । वृन्दावन में यमुना जी में उसका जहाज फँस गया और डूबने लगा । रामदास कपूर इस संकट को देखकर जहाज में ही बैठा हुआ रोने लगा । बाबा महाराज बताते हैं कि इसी तरह एक बार ब्रज चौरासी कोस की यात्रा के दौरान वृन्दावन में यमुनाजी को पार करते समय नदी के बीच में बाढ़ के पानी में हमारा स्टीमर भी फँस गया था । सैकड़ों लोगों के बाढ़ में बढ़ी हुई यमुनाजी के अगाध जल में डूबने की विकट स्थिति उत्पन्न हो गयी । उस समय हमने यमुनाजी की महिमा का पद गाया – 'नमो नमो यमुना महारानी ।' यमुनाजी ने उसी समय चमत्कारिक ढंग से ऐसी कृपा करी कि स्टीमर भयंकर बाढ़ के खतरे से पार हो गया ।

इधर रामदास व्यापारी अपने जहाज के यमुनाजी के जल में उत्पन्न भँवर में फँसने पर रोने-चिल्लाने लगा, पुकारने लगा – 'अरे, क्या यहाँ कोई मुझे बचाने वाला है ? इस जहाज में मेरे जीवन भर की कमाई है ।' उस समय यमुना के किनारे मदन मोहन ठाकुरजी बालक रूप में अपनी ही आयु के सात-आठ ग्वाल बालों के साथ गेंद से खेलने लगे । व्यापारी की पुकार सुनकर मदन मोहन जी बोले – 'कौन चिल्ला रहा है ?' रामदास कपूर बोला – 'मेरा जहाज यमुना में डूब रहा है । क्या यहाँ कोई बचाने वाला है ?' उस व्यापारी को यह पता नहीं था कि वृन्दावन में उस समय घनघोर जंगल था । वहाँ पर छोटे-छोटे बालक कैसे खेल सकते थे ? मदन मोहन जी बालक रूप से बोले – 'अरे व्यापारी ! यहाँ पर सनातन गोस्वामी नामक एक बहुत बड़े सिद्ध महात्मा रहते हैं । तू उन सनातन बाबा की जय बोल दे । तेरा जहाज बच जायेगा ।' कष्ट में पड़ा हुआ मनुष्य अपनी विपत्ति को दूर करने के लिए कोई भी उपाय करने को तैयार रहता है । इसीलिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है – 'आरत काह न करइ कुकरमू ।' अतः रामदास कपूर भी उस बालक के कहने पर जोर-जोर से 'सनातन बाबा की जय' बोलने लगा । उसके ऐसा करते ही जहाज तुरन्त ही संकट से मुक्त हो गया और यमुना किनारे आ लगा । रामदास कपूर जहाज से उतरा तो उसने देखा कि कुछ बालक वहाँ खेल रहे हैं । उसको यह तो पता नहीं चला कि बालक रूप में ये साक्षात् भगवान् हैं । उसने बालक रूप धारी मदन मोहन जी से पूछा – 'लाला ! तेरे कहने पर मैंने सनातन बाबा की जय बोली तो मेरा जहाज तो डूबने से बच गया । मेरे भी प्राण बचे और जहाज पर रखा बहुत ही कीमती सामान भी बच गया । अब मुझे यह बता कि वे सनातन बाबा कहाँ रहते हैं ?' बालक ने कहा – 'इस टीले के ऊपर चले जाओ । सनातन बाबा वहीं रहते हैं । वे बहुत बड़े सिद्ध महात्मा हैं ।' व्यापारी ऊपर गया तो उसने देखा कि वहाँ सनातन गोस्वामी जी भजन कर रहे थे । उन्हें तो व्यापारी के साथ घटी इस चमत्कारिक घटना के बारे में कुछ भी पता नहीं था । रामदास कपूर ने उनको साष्टांग प्रणाम किया और बोला – 'गुरुदेव ! आपने मुझे बहुत बड़े संकट से बचा लिया, नहीं तो मेरे सम्पूर्ण जीवन की कमाई नष्ट हो जाती और उससे भी कीमती मेरे प्राण भी चले जाते ।' सनातन जी ने आश्चर्य से पूछा – 'अरे, मैंने तुम्हें कब बचाया ?' रामदास कपूर बोला – 'गुरुदेव ! आप तो सब कुछ करके भी अनजान बन रहे हैं । आपने ही तो मुझे बचाया है ।' सनातनजी – 'मैंने तुझे कब बचाया ? मुझे तो पता भी नहीं कि तेरे साथ क्या दुर्घटना घटी ?' रामदास कपूर – 'मेरा जहाज यमुना जी में फँस गया था, डूबने ही वाला था । मैं रक्षा के लिए जोर-जोर से पुकारने लगा तो यहाँ खेल रहे कुछ बालकों में से एक बालक ने कहा कि यहाँ सनातन बाबा नामक एक बहुत बड़े सिद्ध महात्मा रहते हैं । उनकी जय बोलो तो तुम्हारा जहाज डूबने से बच जायेगा । मैंने ऐसा ही किया, बार-बार आपके नाम की जय-जयकार की तो जहाज तुरन्त ही भँवर से पार हो गया और डूबने से बच गया ।' सनातन जी – 'यहाँ यमुना किनारे घनघोर जंगल में बालक कैसे आ सकते हैं ?' रामदास कपूर – 'अरे, वे बालक नीचे खेल तो रहे हैं ।' सनातन जी – 'मैं भी चलता हूँ, देखूँ कि बालक यहाँ कहाँ से आ गये ?' आदित्य टीले से नीचे उतरकर सनातन जी आये तो वहाँ बालक नहीं थे । उन्होंने रामदास कपूर से कहा – 'यहाँ बालक कहाँ हैं ? तुम झूठ बोलते हो ।' रामदास बोला – 'मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ । आपके पास आने के पहले यहाँ बहुत से बालक खेल रहे थे । उनमें से एक बालक बहुत ही सुन्दर था । उसी ने मुझसे कहा कि ऊपर चले जाओ, सिद्ध बाबा वहीं रहते हैं ।' सनातन जी

अपने ठाकुरजी की सब लीला समझ गये और प्रेम से भरकर बोले – 'अरे, तू तो मूर्ख बन गया । वह बालक कोई और नहीं, मेरे इष्टदेव ठाकुर मदन मोहन जी थे । उन्होंने ही तेरी और तेरे जहाज की रक्षा की । मैं भला किसी को कैसे बचा सकता हूँ ? मैं तो एक भीख माँगने वाला तुच्छ बाबाजी हूँ ।' सनातन जी की बात सुनकर अत्यधिक आश्चर्यचकित होकर रामदास कपूर बोला – 'महाराज ! वे आपके ठाकुर मदन मोहन जी थे ? उन्होंने मुझ पर साक्षात् रूप से कृपा की । यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो मैं यहाँ उनका एक विशाल मन्दिर बनवा दूँ ? उनके लिए भोग-राग की व्यवस्था कर दूँ ?' सनातन जी ने कहा – 'अब इस बारे में मैं क्या कहूँ ? तू जाने और तेरा मदन मोहन जाने ।' सनातन जी ने विचार किया कि मदन मोहन जी अपना मन्दिर बनवाना चाहते हैं तो मैं उनकी इस इच्छा में हस्तक्षेप क्यों करूँ ?

बाबाश्री मान मन्दिर से जुड़ी घटना के बारे में बताते हैं - अब जैसे बाहर के कुछ लोग मान मन्दिर का नवीन स्वरूप निर्मित करवाना चाहते हैं । इसके लिए वे लोग धन भी अर्जित कर रहे हैं और मन्दिर का नक्शा भी उन्होंने बनवाया है । हमने कहा कि हमारे मन्दिर का तो कोई व्यक्ति किसी से पैसा माँगेगा नहीं । हमारे यहाँ दुकानदारी नहीं है फिर भी बाहर के श्रद्धालु लोग यदि नया मन्दिर बनाना चाहते हैं तो मैं उन्हें बलपूर्वक कैसे रोक सकता हूँ क्योंकि है तो यह मानबिहारी लाल का ही घर, उन्हीं का मन्दिर परन्तु मैंने इतना अवश्य कह दिया कि मेरी ऐसी इच्छा नहीं है । ऐसा मैंने आज से तीस-पैंतीस साल पहले भी कहा था, जब देश का एक प्रमुख उद्योगपति तीस लोगों के साथ यहाँ आया था । उसने मुझसे पूछा कि क्या मैं इस मन्दिर का नव निर्माण कर दूँ तो मैंने कहा – नहीं । उस समय मैं मान मन्दिर में अकेले रहता था । मैंने सोचा कि जिस मन्दिर में केवल मैं ही एकान्त में रहता हूँ तो उस स्थान पर एक बड़े मन्दिर के निर्माण हेतु किसी के धन को व्यर्थ में क्यों खर्च होने दिया जाये । हालाँकि वर्तमानकाल में तो मैं अकेले नहीं हूँ । अब तो यहाँ भक्तों का एक विशाल समुदाय है । इन सबकी सुविधा की दृष्टि से यदि कुछ श्रद्धालु लोग नव मन्दिर का निर्माण करवाना चाहते हैं तो मैं उन्हें जबरन नहीं रोकना चाहता क्योंकि यह एक अपराध होगा और अपराध से मैं भयभीत रहता हूँ । श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में भगवान् कृष्ण ने कहा है – **"मदर्चां सम्प्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेद् दृढम्"** – (भा.११/२७/५०) मेरी उपासना के लिए सुदृढ मन्दिर का निर्माण करवाना चाहिए और उसमें मेरे अर्चा-विग्रह की स्थापना करनी चाहिये । वह मन्दिर कैसे बने ? पहले तो यह जानना चाहिये कि भारत में बड़े ही प्रसिद्ध और वैभवशाली मन्दिर क्यों टूट गये ? उसका कारण यही था कि मन्दिर बनवाने वाले हम जैसे लोग कोई भी कार्य कामना से युक्त होकर करते हैं । जो चीज सकाम होती है, वह अल्पकालिक होती है (कम समय तक अस्तित्त्व में रह पाती है, वह दीर्घ काल तक नहीं रह पाती है), वह थोड़े ही दिनों में टूट जाती है । भगवान् ने गीता में कहा है –

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् । क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ (श्रीगीताजी १७/१८)

अपने सम्मान, यश की इच्छा से और दम्भ (दिखावे) के लिए जो तप अर्थात् शुभ कार्य किया जाता है, वह राजस होता है, अनिश्चित एवं चलम् अर्थात् थोड़े दिनों के लिए तथा अध्रुवम् – बहुत दिनों तक नहीं रहेगा ।

इसके विपरीत जब हम इच्छा नहीं कर रहे हैं और अपने आप ही किसी वस्तु का निर्माण हो गया तो हजारों सालों तक वह चीज टिकेगी । अब जैसे यहाँ मन्दिर बनने जा रहा है तो कैसे यह कार्य हो रहा है ? यहाँ न कोई चन्दा करने जाता है और न ही किसी से याचना करता है । अगर प्रभु की इच्छा होगी तो अपने आप ही सफलता मिल जायेगी । जो व्यक्ति मन्दिर निर्माण के कार्य में लगने जा रहा है, उसको धन मिल जायेगा । मन्दिर निर्माण के लिए उत्सुक व्यक्ति ने मुझसे कहा कि आप मान मन्दिर की महिमा के सम्बन्ध में कोई साहित्य लिख दीजिये, चार पंक्ति लिख दीजिये क्योंकि जब शुभ कार्य के लिए धन की याचना करने वाला अपने कार्य की महिमा के सम्बन्ध में जब किसी को कुछ समझाता है, तभी तो उसे धन मिलता है । स्वाभाविक रूप से तो कोई धन देता नहीं है परन्तु मैंने चार पंक्ति भी मन्दिर के सम्बन्ध में नहीं लिखी । अब ठाकुरजी की इच्छा होगी तो अपने आप ही उसको सफलता मिल जाएगी । मन्दिर निर्माण में प्रयत्नशील उस बाहर के व्यक्ति की भावना बहुत प्रबल है, यद्यपि वह धनी नहीं है, फिर भी उसने कहा कि एक लाख पाँच हजार रुपये

तो मेरे पास हैं । मन्दिर निर्माण के लिए पहली रसीद मैं काटूँगा अर्थात् सबसे पहले मैं ही मन्दिर निर्माण के लिए धन दूँगा । उसकी बात को सुनकर मैंने सोचा कि अब तो अवश्य ही मन्दिर बनेगा क्योंकि जब यह व्यक्ति अपना सब कुछ लगा रहा है तो भगवान् तो जीव की भावना को देखते हैं, इसलिए अब कार्य नहीं रुकेगा चाहे कितने ही करोड़ की धनराशि लगे । प्रभु के भरोसे हाँको गाड़ी । इसीलिए मनुष्य को चाह नहीं रखनी चाहिए । उदाहरण के तौर पर जैसे चैतन्य महाप्रभु के दादा गुरु माधवेन्द्र पुरी जी थे । वे गोवर्धन के श्रीनाथ जी के लिए चन्दन की लकड़ी लेने के लिए उड़ीसा पहुँचे तो रास्ते में साक्षी गोपाल जी का मन्दिर था । उस मन्दिर में ठाकुरजी को जिस खीर का भोग लगाया जाता है, वह खीर भी अत्यन्त विशिष्ट पद्धति से बनायी जाती है । वहाँ उसको 'अमृत केलि' कहते हैं । दूध, चावल और मीठा के मिश्रण से तो भारत में सभी स्थानों पर साधारण विधि से खीर बनाई जाती है परन्तु साक्षी गोपालजी की 'अमृत केलि' तो बहुत ही विशेष किस्म की खीर है । माधवेन्द्र पुरी जी जब साक्षी गोपाल के मन्दिर में पहुँचे तो ठाकुरजी के अमृत केलि भोग की महिमा को सुनकर उनके हृदय में अपने श्रीनाथजी के लिए भी ऐसा ही भोग अर्पण करने की अभिलाषा जाग्रत हुई परन्तु माधवेन्द्रपुरीजी किसी से कोई याचना नहीं करते थे । दो-चार दिन में बिना माँगे यदि कहीं से दूध मिल जाता था तो उसे ग्रहण कर लेते थे । कई दिनों तक वे भूखे भी रह लेते थे । भगवान् के ऐसे भक्त होते हैं । हम लोग क्या भक्ति करेंगे ? हम लोग तो दिन में कई बार खाते हैं । सुबह, दोपहर, शाम और रात को खाते हैं । हम लोग तो भोजन के दास हैं । रात को जब साक्षी गोपाल जी के शयन का समय हो गया तो माधवेन्द्र पुरी जी किसी एकान्त कुञ्ज में चले गये । उनके मन में विचार आया कि यदि गोपालजी की अमृत केलि का थोड़ा सा प्रसाद मुझे भी मिलता तो मैं भी देखता कि इसका कैसा स्वाद है और फिर मैं भी अपने श्रीनाथ जी को भोग लगाता । वे तो भजन करने लगे किन्तु उन्होंने किसी से अमृत केलि प्रसाद नहीं माँगा । साक्षी गोपाल जी को मिट्टी के बारह बड़े सकोरों में अमृत केलि का भोग लगता था । रात्रि शयन के बाद ठाकुरजी ने पुजारी को स्वप्नादेश दिया – 'मैंने अमृत केलि के बारह सकोरों में एक सकोरा चुराकर अपने झंगा (कमर से पाँव तक पहनने वाला वस्त्र) में छिपा लिया है । यहाँ निकट ही एक कुञ्ज में मेरे परम भक्त माधवेन्द्र पुरी जी भजन कर रहे है । तुम मेरे वस्त्र में से उस सकोरे को निकालकर वह प्रसाद उनको दे देना ।' पुजारी की नींद खुली तो उसने सोचा कि मैंने तो बारह सकोरे गिनकर रखे थे । उसने ठाकुरजी के पास जाकर देखा तो उनके झंगे के भीतर अमृत केलि का सकोरा था । ठाकुरजी ने उसे चुराकर इस तरह छिपा रखा था । पुजारी उस सकोरे को लेकर मन्दिर के बाहर गया और पुकारने लगा – 'यहाँ माधवेन्द्र पुरी नाम के भक्त कौन हैं ?' माधवेन्द्र पुरी जी अपना नाम सुनकर आये और पुजारी ने उन्हें ठाकुरजी के भोग का वह दिव्य प्रसाद दिया । ठाकुरजी का स्पर्श पाकर वह तो अत्यधिक अमृतमय प्रसाद बन गया था । माधवेन्द्र जी ने प्रसाद पाने के बाद मिट्टी के उस सकोरे को अपने पास रख लिया और उसके टुकड़े-टुकड़े करके उसकी मिट्टी के कण को प्रतिदिन चखा करते थे परन्तु प्रसाद पाकर वे प्रसन्न नहीं हुए । उनको बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ । उन्होंने सोचा कि मेरे मन में अमृत केलि प्रसाद को चखने की इच्छा क्यों उत्पन्न हुई और फिर मेरी इस कामना पूर्ति के लिए ठाकुरजी को स्वयं कष्ट उठाना पड़ा, उन्होंने मेरे लिए भोग के सकोरे की चोरी करके अपने वस्त्र में छिपाया ।

मन में इच्छा नहीं आये, यही है सच्ची भक्ति । हमारे मन में तो वासना है और यदि कोई ठाकुरजी के लिए पैसा चढ़ाता है तो हम झूठे ही कहें – नहीं-नहीं, मत चढ़ाओ किन्तु मन में सोच रहे हैं कि पैसा रख लेना चाहिए तो यह ढोंग वाला त्याग है । जैसे ब्रजवासी कहते हैं – 'सेंगरा को रायतो बोल बहू जो खाय तो याही खातिर बैठी कोई हाथ पकड़ ले जायतो ।' नव वधू झूठे ही ऊपर से मना कर रही है कि मैं कुछ नहीं खाऊँगी किन्तु मन में सोच रही है कि कोई हाथ पकड़कर ले जाए तो खा लूँगी । यही हालत हम जैसे लोगों की है जो केवल बाहरी त्याग का प्रदर्शन करते हैं परन्तु यदि सच में भीतर का त्याग आ जाये तो ठाकुरजी आगे-पीछे घूमेंगे ।

श्रीधामवास में सावधानी

बाबाश्री द्वारा कथित श्रीधाम-महिमा (२३/१/१९९९) से संकलित

वृन्दानि सर्वमहतामपहाय दूराद् –वृन्दाटवीमनुसर प्रणयेन चेतः ।
सत्तारणीकृत सुभाव सुधारसौघं राधाभिधानमिह दिव्य निधानमस्ति ॥ (श्रीराधासुधानिधि – ८)

श्रद्धा तीन प्रकार की होती है । ललितादि सखियाँ श्रीजी की सेवा करती हैं, उनमें आराम से श्रद्धा हो जाती है । भाव बल की श्रद्धा भी आराम से हो जाती है । कोई आचार्य हैं, विरक्त महात्मा भजन करते हैं, उनके प्रति भी भाव सहजता से हो जाता है । कठिन भक्ति है स्थापना बल की श्रद्धा ।

ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्य दृश्याश्च ये ।
सर्वान् वस्तुतया निरीक्ष्य परम स्वाराध्यबुद्धिर्मम ॥ (श्रीराधासुधानिधि - २६४)

ब्रज के क्रूर, दुष्ट, पापी चोर आदि को देखकर भी जब भाव की उत्पत्ति होती है तब सारा ब्रज राधाकृष्णमय दिखता है, ऐसा हृदय बनना कठिन है । हृदय की दो वृत्तियाँ हैं – भाव वृत्ति और अभाव वृत्ति । अभाव वृत्ति हटने पर केवल भाव वृत्ति होने पर ही धाम की उपासना हो सकती है । ऐसा भाव होना कठिन है क्योंकि हमारे मन में सदा अभाव वृत्ति ही दौड़ती रहती है । ये सब चीजें जब बन्द होकर सर्वत्र भाव दृष्टि होती है, उसे कहते हैं धाम उपासना । धाम में वास करने मात्र से ही राधारानी मिल जायेंगी । बिना किसी प्रयास या साधन के भगवान् मिल जायेंगे । कोई प्रयास मत करो । भजन की भी आवश्यकता नहीं है, अपने आप भगवान् मिल जायेंगे ।

जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा । मम समीप नर पावहिं बासा ॥ (श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - ४)

बिना प्रयास के भगवान् हमारे पास आ जायेगा, वही धाम बरसाना है । रसोपासना कोई खेल नहीं है । सारे ब्रज के बारे में सोचो तो – **स्वानन्दसच्चिद्घनरूपतामति – र्यावन्न वृन्दावन वासिजन्तुषु ।**
तावत् प्रविष्टोऽपि न तत्र विन्दते ततोऽपराधात् पदवीं परात्पराम् ॥ (श्रीवृन्दावनमहिमामृतशतक १७/८३)

यह श्लोक धामोपासना का, धामोपासना में बहुत शीघ्र सिद्धि पाने का एक ज्योति स्तम्भ (light pillar) है । धाम में निष्ठा के साथ रहने से बहुत जल्दी राधारानी-नन्दलाल की प्राप्ति होती है । हम धाम में गये, बरसाना गये, गोवर्धन गये, अथवा बरसाना-नन्दगाँव में कहीं भी रहते हों, वृन्दावनवासी जन्तु – ब्रज में जितने भी जीव हैं, मनुष्य हैं, सब जीवों में स्वानन्दसच्चिद् घनरूपता मति हो, सबमें सच्चिदानन्दघन मति जब तक नहीं होगी तब तक प्रविष्टोऽपि – धाम में रहने के बाद भी कुछ अनुभूति नहीं होगी जैसे गंगाजी में कछुए । ऐसी मति न होने पर धाम में रहने पर भी परात्पर पदवी नहीं प्राप्त होगी । राधा माधव धाम में निरन्तर लीला कर रहे हैं, वे तुम्हारे सामने नहीं आयेंगे । ये एक प्रकार का judgement (अंतिम निर्णय) है, उपासना करने चले हो तो उपासना के लिए धाम में सब जगह यह भाव रखना चाहिए । ऐसा भाव तभी आएगा जब ऐसे भाव वाले का संग किया जाए । ऐसा संग होता नहीं है । सदा आलोचना में ही हम लोग लगे रहते हैं । जहाँ अभाव की चर्चा होती है, अभावमयी बातें होती हैं, उसको कहने-सुनने से कैसे सच्चिदानन्द बुद्धि हो जायेगी ? इसलिए ऐसा संग मिले जो हर समय भाव बनाये क्योंकि जीव तो सदा अभाव की ओर दौड़ता है । हमारा अनादि काल का अभ्यास यही है निन्दा करना । अभाव और निन्दा की बातें किसी भी उपासना को सिद्ध नहीं होने देंगी, ब्रज उपासना की बात तो छोड़ो । रसोपासना तो बहुत कोमल उपासना है, मृदु उपासना है, बड़ी कोमल भावनाओं का संग्रह है । रसोपासना कोई खेल नहीं है किन्तु यदि भक्ति करने भी चले हो तो यहाँ भी कहा गया है –

अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम् । (श्रीभागवतमाहात्म्य ४/८०)

सेवाकथा का रस भी तभी मिलेगा, जब गुण-दोष चिन्तन वाली बुद्धि से मनुष्य छूट जाये । 'धर्मंभजस्व' - धर्म क्या है ? धर्म है 'वैष्णव धर्म' – इसमें सर्वत्र भगवद् भाव रखा जाना चाहिये । 'त्यज लोक धर्मान्' – संसार के जितने लोक धर्म हैं, उनको छोड़ दो । कुटुम्ब-परिवार आदि साधु-समाज में भी धर्म है, गृहस्थियों की तरह वहाँ भी पंगत में निमन्त्रण बन्द

कर दिया जाता है, यह सब लोकधर्म है । 'सेवस्व साधु पुरुष' – साधु पुरुष माने भावुक पुरुष का संग पकड़ो तब तुम्हारी कामतृष्णा छूटेगी । परन्तु सब का बाप है कि दोषगुण चिन्तन छोड़ दो । इसके बाद सेवा आनन्द ले लो, कथा आनन्द ले लो, लीला आनन्द ले लो, सब दरवाजे खुल जायेंगे । इसको कहते हैं स्थापना बल की श्रद्धा । मनोबल की श्रद्धा, भाव बल की श्रद्धा आसान है परन्तु सर्वत्र राधाकृष्णमय या सच्चिदानन्द भाव रहे, यह बिना भावुक भक्त के संग के नहीं होगा । संत माने कपड़े बदल लेने वाले व्यक्ति नहीं, भावुक भक्त चाहे भले ही वह गृहस्थ है । भावुक होना आवश्यक है ।

जब मैं (बाबाश्री) पहली बार ब्रज में आया था तो सिद्ध सन्त ग्वारिया बाबा के शिष्य श्रीजी मन्दिर के श्री किशोरी लाल गोस्वामीजी ने मुझसे कहा था – 'बेटा ! मेरी एक बात मान लो, तुम भले ही मान मंदिर में दस-बारह घंटे सो जाना किन्तु साधु संग मत करना ।' यह सुनकर मुझे बड़ा धक्का लगा । मैंने उनसे कहा कि सभी भक्ति शास्त्रों में तो भक्ति और भगवान् की प्राप्ति के लिए साधु संग को अनिवार्य बताया गया है फिर आप ऐसा क्यों कहते हैं ? गोस्वामीजी ने कहा कि जिन साधुओं के संग की बात शास्त्र में कही गयी है, आजकल ऐसे साधु तुम्हें दिखाई नहीं देंगे । तुम साधु समाज में जाकर देखो, वहाँ तुमको कृष्ण चर्चा, भगवच्चर्चा नहीं मिलेगी । क्या मिलेगा ? या तो वे साधु समाज में होने वाले भण्डारे की चर्चा करते हैं कि कहाँ आज पंगत हो रही है अथवा एक दूसरे की निन्दा में लगे रहते हैं । ऐसे तथाकथित साधुओं का संग बहुत ही खतरनाक है । निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रसिद्ध रस ग्रन्थ महावाणी में कहा गया है – **"पहले रसिक जनन को सेवै ।"** पहले भावुक भक्त का संग मिले, उससे भावमयी दृष्टि की प्राप्ति होती है । भावमयी दृष्टि को समझें । भाव अनन्त प्रकार का है । **"भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनी भाव्यते ।**
स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते ॥" (श्रीभागवतजी ३/२९/७)

भाव आँखों में नहीं, अन्तःकरण में, चित्त में रहता है । श्रीहित हरिवंश महाप्रभु के शिष्य और विशाखा सखी के अवतार परम रसिक सन्त श्रीहरिरामव्यासजी ने कहा है – **"कहा भयो वृन्दावन बसै । ज्यों लगि व्यापत माया, त्यों लगि कहा घर ते निकसे ॥"** घर छोड़कर ब्रज – वृन्दावन धाम में आये और यहाँ भी वही माया लग रही है तो क्या फायदा घर छोड़ने से, कुआँ छोड़ा और वहाँ से निकलकर भाड़ में गिर पड़े । लोग बड़े-बड़े मंदिर – आश्रम बना लेते हैं, वहाँ भोग-राग के पीछे बड़े-बड़े माल घुटने लग जाते हैं । उधर ही वृत्ति चली जाती है, व्यासजी कहते हैं कि यदि ये मेवा – मिष्ठान्न आदि खाओगे तो विषय ही जोर करेगा । **"धन मेवा को मंदिर सेवत, करत कोठरी विषय रसै । कोटि-कोटि दंडवत करै कह, भूमि ललाट घिसै ॥"** ऊपर से दण्डवत करता है किन्तु **"मुँह मीठे मन सीठे कपटी"** मन फीका है, मन में भाव कुछ नहीं है । **"बचन रचन नैननि बिहसै ।"** वचन-रचन का मतलब है कि दण्डवत करके निकले किन्तु बाहर आकर निन्दा करने लग गया कि देखो, वह कैसी बात बनाता है ? अरे, तुम तो दण्डवत करके निकले थे, अब बाहर आकर ऐसी बात करते हो । **"मन्त्र ठगोरी कबहुँ न तन्त्र गद, मानत विषय डसै ॥"** विषयों का जहर नहीं उतर रहा है, जबकि मन्त्र जप, माला जप खूब कर रहे हैं । त्याग का भी ड्रामा किया जाता है । पैसा तो नहीं छूते परन्तु कमण्डल में माल घोटते हैं । **"कंचन हाथ न छुअत कमण्डल, मैं मिलाय विलसै । व्यास लोभ रति हरि हरिदासनि, परमारथहि खसै ॥"** लोभ के कारण भगवान् और हरिदासों की महिमा समझ नहीं पाया । ये पद इसलिए नहीं बनाये गये हैं कि हम धाम को छोड़ दें । ये इसलिए बनाये गये हैं कि हम लोग धाम में रहकर बहुत जल्दी सिद्धि को प्राप्त कर लें, बहुत शीघ्र श्रीकृष्ण लीला में प्रवेश हो जाये । कोई साधक प्राकृत भावों से बचते हुये धाम के प्रति भावना करता है तो बहुत जल्दी सिद्धि प्राप्त होती है किन्तु दोष चिन्तन रहते हुये ऐसा सम्भव नहीं है । **"राम धामदा पुरी सुहावनि । अति प्रिय मोहि यहाँ के वासी । मम धामदा पुरी सुखरासी ॥"** धाम में रहने से आप बिना मेहनत के राधामाधव के नित्य धाम में पहुँच जाओगे ।

श्रीराधासुधानिधि के श्लोक - ८ की व्याख्या में श्रीबाबा महाराज के इस उपदेश का सार यही है कि धाम में वास करने के लिए दोष-गुण चिन्तनमयी वृत्ति, अभावमयी वृत्ति छोड़ना आवश्यक है । जब तक अभावमयी वृत्ति बनी रहेगी, परनिन्दा में हम लगे रहेंगे तब तक धाम में रहने पर भी हमें सर्वत्र सच्चिदानन्दमयी मति की प्राप्ति नहीं होगी, धाम का

कण-कण, यहाँ के वासी राधा-कृष्णमय नहीं प्रतीत होंगे । भावमयी वृत्ति की प्राप्ति के लिए भावुक भक्त का निरन्तर संग परम आवश्यक है । यह अनिवार्य नहीं है कि विरक्त वेषधारी का ही संग हो, यदि कोई गृहस्थ किन्तु भावुक भक्त हों तो ऐसे भावुक गृहस्थ भक्त का संग ही हमें धाम के प्रति सर्वत्र भावमयी दृष्टि, सच्चिदानन्दमयी वृत्ति का दान करेगा । भाव की प्राप्ति होने पर बिना मेहनत, बिना प्रयास के ही हमें श्रीराधा-माधव के नित्य धाम और उनकी नित्य लीला की प्राप्ति होगी ।

मद से मूढता

इन्द्रियों से लौकिक शब्द, स्पर्श, रूप, रस व गन्ध का ग्रहण करना ही बहिर्मुखता है ।

बाह्यस्पर्शेश्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् । (श्रीगीताजी ५/२१)

आत्मसुख तो अन्तर्मुखता में है । बाह्य वस्तु-पदार्थों से जब मन असम्पृक्त (अनासक्त) रहेगा तो अन्तर्मुखता आएगी, अन्यथा बाह्ययोग के रहते ब्रह्मयोग तो असम्भव ही है । महाप्रयाणकाल में श्रीमदाचार्य वल्लभमहाप्रभु ने अपने पुत्रों को अन्तिम उपदेश दिया था – **"यदा बहिर्मुखो यूयं भविष्यथ कथंचन । तदाकाल प्रवाहस्था देहचित्तादयोऽप्युत । सर्वथा भक्षयिष्यन्ति युष्मानिति मतिर्मम् ॥"** यदि तुम किसी भी प्रकार से बहिर्मुख हो जाओगे तो काल-प्रवाह में स्थित देह तथा चित्त आदि तुम्हें पूर्ण रूप से खा जायेंगे । प्रमाद से ही बहिर्मुखता आती है । श्री ऋषभ भगवान् के वचन हैं –

नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति । (श्रीभागवतजी ५/५/४)

इन्द्रिय-प्रीत्यर्थ किये जाने वाले समस्त कर्म विकर्म हैं । प्रमाद में विकर्म होते हैं । विकर्म २ प्रकार के हैं –

लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ।
यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥ (श्रीभागवतजी ३/९/१७)

कुशल कर्मों का त्याग एवं अकुशल (निषिद्ध) कर्मों में प्रवृत्ति । कुशल कर्म क्या है ? 'त्वदुदिते' अर्थात् आपके द्वारा उक्त भागवत धर्म रूप आराधना ही कुशल कर्म है । आराधना रूप कर्मों का त्याग एवं इतर कर्मों को करना, दोनों ही विकर्म हैं । दोनों का दुष्परिणाम है – 'काल' अर्थात् मृत्यु ।

नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति ।
न साधु मन्ये यत आत्मनोऽयमसन्नपि क्लेशद आस देहः ॥ (श्रीभागवतजी ५/५/४)

प्रमाद ही वह दोष है, जिससे मनुष्य विकर्म करता है । इस विकर्ममयी प्रवृत्ति से ही आत्मा को यह दुःखप्रद शरीर प्राप्त होता है । कथनाशय है कि 'प्रमाद' जब तक है, विकर्म होंगे एवं विकर्म से बहिर्मुखता अवश्य आएगी ।

यदा न पश्यत्ययथा गुणेहां स्वार्थे प्रमत्तः सहसा विपश्चित् । गतस्मृतिर्विन्दति तत्र तापानासाद्य मैथुन्यमगारमज्ञः ॥
पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेतं तयोर्मिथो हृदयग्रन्थिमाहुः । अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तैर्जनस्य मोहोऽयमहं ममेति ॥

(श्रीभागवतजी ५/५/७, ८)

स्वार्थ में मूढ जीव विषय-भोगों को सत्य समझता है । आत्मस्वरूप को भूल जाने से अज्ञानवश गृह, धनादि में आसक्त होकर अनेक कष्ट पाता है । दाम्पत्त्य व देहाभिमान की स्थूल-सूक्ष्म दुर्भेद्य ग्रन्थियों में बँधे हुए उस जीव को 'मैं-मेरेपन' का मोह और अधिक हो जाता है । ध्यान रहे, प्रमाद कैसा भी है, बहिर्मुख बना ही देगा ।

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान् । नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम् ॥ (श्रीभागवतजी १/८/२६)

बहिर्मुखता भी ऐसी कि भगवद्-उपासना तो दूर भगवान् का एक नाम भी नहीं ले सकोगे । जैसे रावण के मुख से कभी 'राम-नाम' नहीं निकला, रामजी के लिए 'तपसी' शब्द का प्रयोग करता था । श्रीहनुमानजी ने कहा भी है –

राम नाम बिनु गिरा न सोहा । देखु बिचारि त्यागि मद मोहा ॥ (श्रीरामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड - २३)

रावण ! 'राम' नाम के बिना वाणी की शोभा नहीं है । मद-मोह छोड़, विचार करके देख ।

रावण बहुत बड़ा तपस्वी व शिवोपासक था किन्तु मद व प्रमाद से अत्यन्त निकृष्टता को प्राप्त हो गया ।

जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः । यद्यस्य न भवेत् स्तम्भस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥ (श्रीभागवतजी ८/२२/२६)

स्वयं भगवान् कह रहे हैं – अच्छे कुल में जन्म, सत्कर्म, अवस्था, रूप, विद्या, ऐश्वर्य एवं धनादि से स्तम्भ (ऐंठ) भाव आता है । स्तम्भ न होना ही मेरी वास्तविक कृपा है ।

"यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते ॥" (श्रीभागवतजी ८/२२/२४)

मद से स्तम्भ आता है और फिर वह मनुष्य, भक्त व भगवद् अवमानना से अपराधी बन जाता है ।

मानस्तम्भनिमित्तानां जन्मादीनां समन्ततः । सर्वश्रेयःप्रतीपानां हन्त मुह्येन्न मत्परः ॥ (श्रीभागवतजी ८/२२/२७)

ध्यान रहे, अहं व स्तम्भ की उत्पत्ति श्रेय के समस्त मार्ग बन्द कर देगी । अतः अनन्यता का मद न करें सामान्य से सामान्य भक्त के अपराध से भी सावधान रहें । रसिकों ने कहा है – **"अब हौं कासौं बैर करौं ।**

प्रानी सब समान अवलोकौं, भक्तनि अधिक डरों ॥" (श्रीबिहारिनदेव जी-सिद्धांत के पद-९८)

पुनः **"भक्त साधारण के अपराधहि कांपत डरनि हियो ॥"** (श्रीबिहारिन देव जी-सिद्धांत के पद-५८)

'अहं' से स्मृति का नाश होने पर भगवद्-स्मृति नहीं रहती, मैं साधु, मैं विरक्त, मैं सन्यासी, मैं अनन्य ..... अशुद्ध स्मृति ही रह जाती है । श्रीमच्चैतन्य महाप्रभु जी के वचन हैं –

नाहं विप्रो न च नरपति-र्नापि वैश्यो न शूद्रो, नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा ।

किन्तु प्रोद्यन्निखिल-परमानन्द-पूर्णामृताब्धे- र्गोपीभर्त्तुः पदकमलयोर्दास-दासानुदासः ॥

प्रत्येक साधक यह सोचे कि मैं न ब्राह्मण हूँ, न क्षत्रिय, न वैश्य, न शूद्र, न ब्रह्मचारी, न गृहस्थी, न वानप्रस्थी, न सन्यासी किन्तु निखिल परमानन्द के पूर्ण अमृत समुद्र गोपिकाकान्त के दासों के दासों का दास हूँ । वृत्रासुर ने भी भगवान् से दासानुदास बनने की ही याचना की थी – **अहं हरे तव पादैकमूलदासानुदासोभवितास्मि भूयः ।** (श्रीभागवतजी ६/११/२४)

अथवा **सन्तनि की पनहीं को रच्छक कहाऊँ ।** (श्रीसूरदासमदनमोहनजी)

ईशमानिता में डूबे हम लोग अभी दासानुदास की स्थिति से सुदूर हैं ।

"असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि । ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥" (श्रीगीताजी १६/१४)

प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को शासक, ईश्वर समझता है । एक छोटी सी कुटिया में रहने वाला विरक्त भी स्वयं को उस कुटिया का मालिक मानता है । मैं ईश्वर हूँ, मालिक हूँ, बलवान हूँ .....ये सब आसुरी भाव हैं । आसुरी भाव क्या है ?

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः । यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥ (श्रीगीताजी १६/१७)

आत्मसम्भावना (अपने को कुछ समझना) ही आसुरी भाव है, धन और मान से मद और फिर आत्मसम्भावना आ जाती है । श्रीकृष्ण कहते हैं – **अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः । मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥**

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् । क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि । मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥ (श्रीगीताजी १६/१८, १९, २०)

अहंकार, बल, दर्प, कामना, क्रोध, निंदा, द्वेष .... ये सब आसुरी भाव हैं, जो अनादिकाल से हम लोगों में भरे हुए हैं । ऐसे लोगों को मैं तिरस्कार पूर्वक आसुरी योनि में फेंक देता हूँ, जिससे असुर बनकर वे जन्म-जन्मान्तर तक मुझे प्राप्त न कर सकें । ऐसे नराधमों का, किसी जन्म में कल्याण नहीं होता है । मद इतना सूक्ष्म होता है कि इसे जीव जान ही नहीं पाता फिर दूर करना तो बहुत कठिन है । भगवान् ने भगवद्गीता १६/१६ में कहा कि दम्भ व मान मिलकर मद उत्पन्न करते हैं पुनः १६/१७ में कहा कि धन व मान से मदोत्पन्न होता है । न केवल मनुष्य, सुरासुर सब मद से ग्रसित हैं । हिरण्यकशिपु त्रिलोक विजयी था । एक प्रकार से भगवान् ही बन चुका था । उसने प्रह्लादको कहा –

यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः । क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात् स्तम्भे न दृश्यते ॥ (श्रीभागवतजी ७/८/१३)

अभागे ! किसे ईश्वर मानता है ? मैं ही जगदीश्वर हूँ । तब भगवान् ने उसका वध कर 'मैं' को समाप्त किया । हिरण्यकशिपु तो असुर ठहरा, सृष्टि कर्ता ब्रह्मा भी फँस गये 'मैं' के चक्कर में । सृष्टि बनाने वाले विधाता को भी गर्व हो गया - **ऋषिमाद्यं न बध्नाति पापीयांस्त्वां रजोगुणः । यन्मनो मयि निर्बद्धं प्रजाः संसृजतोऽपि ते ॥** (श्रीभागवतजी ३/९/३५, ३६) श्रीभगवान् ने कहा – ब्रह्माजी ! आप सृष्टि के आदि ऋषि हैं, अनन्त जीवों के सृष्टा होते हुए भी रजोगुण के बंधन से मुक्त हैं । मुझ दुर्बोध ईश्वर को भी आपने जान लिया है । स्वयं भगवान् भी जिन ब्रह्मा जी की प्रशंसा कर रहे हैं उन्हें गर्व हो गया और ग्वाल, गो-वत्सों का हरण कर अपराध कर बैठे ।

पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनि । मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं ह्यहं कियानैच्छमिवार्चिरग्नौ ॥ अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो ह्यजानतस्त्वत् पृथगीशमानिनः । अजावलेपान्धतमोऽन्धचक्षुष एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति ॥ (श्रीभागवतजी १०/१४/९, १०)

श्रीब्रह्माजी ने कहा – प्रभो ! मेरी मूढता तो देखो । आपके ऊपर अपनी माया फैला कर मैंने अपना ऐश्वर्य दिखाना चाहा, भला विशाल तेजोपुञ्ज के सामने चिनगारी अपना प्रकाश दिखाना चाहे तो क्या सम्भव है ? भगवन् ! मैं रजोगुण से उत्पन्न आपको समझ न सका स्वयं को जगत्कर्ता, जगदीश्वर समझ मायाकृत मोह के घोर तम में अन्धाहो गया था । आप मुझे अपना दास समझ कर क्षमा कर दें । मदान्धता में ईश विमुखता और अत्यन्त प्राकृत भाव (नास्तिकता) आ जाता है जिससे वह साक्षात् भगवान् की अवमानना करने लगता है । ब्रह्मा जी के द्वारा भगवान् की भगवत्ता का परीक्षण अवमानना ही थी अतः यह न भूलें कि यह ईशमानिता देवों में भी रहती है । देवराज को भी गर्व हो गया था –

तत्र प्रतिविधिं सम्यगात्मयोगेन साधये । लोकेशमानिनां मौढ्याद्धरिष्ये श्रीमदं तमः ॥

न हि सद्भावयुक्तानां सुराणामीशविस्मयः । मत्तोऽसतां मानभङ्गः प्रशमायोपकल्पते ॥ (भा. १०/२५/१६, १७)

लोकेशमानिता से इन्द्र भी मूढता को प्राप्त हो गए । यद्यपि देवता सद्भाव युक्त (सत्वगुण प्रधान) हैं किन्तु ईशविस्मय से असद्भाव (दुष्ट भाव) को प्राप्त हो जाते हैं । महाराज खट्वांग ने स्वर्ग छोड़ दिया क्योंकि – 'इयं स्वर्गभूमी रजोधिका । कर्मभूमिः पृथ्वी' (श्रीधरी टीका २/१/१३) स्वर्ग तो क्या ब्रह्मलोक पर्यन्त सब गुणमय, मायामय लोक हैं । यद्यपि देवों की प्रार्थना पर भगवान् का अवतार हुआ किन्तु वे अजितात्मा देव भी भगवच्चरणों को ढूँढते रहते हैं । 'अजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात्' (भा. ११/२/५३) यदि इन्द्रिय, मन, बुद्धि विक्षिप्त हैं तो देवत्व प्राप्त करने पर भी कुछ उपलब्धि नहीं होगी । "ये विक्षिप्तेन्द्रियधियो देवास्ते स्वहृदि स्थितम् । न विन्दन्ति प्रियं शश्वदात्मानं किमुतापरे ॥ (श्रीभागवतजी ९/९/४६) महाराज खट्वांग ने कहा – जिनके मन, इन्द्रियाँ विषयों में ही भटक रहे हैं वे सत्वगुण प्रधान देवता होने पर भी अपने हृदय में विराजमान आत्मरूप भगवान् को नहीं जान सकते हैं फिर जो रजोगुणी एवं तमोगुणी हैं, वो तो जान ही कैसे सकते हैं । ईशमानिता से अपनी पूजा बंद होने पर इन्द्र को कोप हुआ ।

अहो श्रीमदमाहात्म्यं गोपानां काननौकसाम् । कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ये चक्रुर्देवहेलनम् ॥
वाचालं बालिशं स्तब्धमज्ञं पण्डितमानिनम् । कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम् ॥ (श्रीभागवतजी १०/२५/३, ५)

मदान्धता में इन्द्र ने कहा – इन गँवारों को देखो, कैसा धन मद हो गया है इन्हें । वनचर होकर देवों का तिरस्कार कर रहे हैं । कृष्ण वाचाल है, बालक है, अभिमानी है, मूर्ख होकर स्वयं को बहुत बड़ा ज्ञानी समझता है, परन्तु इन ब्रजवासियों को देखो, उस मूर्ख की बातों में आकर देवापराध कर रहे हैं ।

माया की कैसी विचित्रता है । जिसके पास पाँच रुपये हैं, वह अपने को पाँच रुपये का मालिक मानता है और अरबों की सम्पत्ति वाला स्वयं को अरबों का मालिक मानता है । ईशता (मालकियत) का भाव दोनों में है । पाँच रुपये रखने वाला भी ईशमानी है और एक अरबपति भी ईशमानी है । एक कमरे में रहकर गुजर करने वाला एक साधारण गृहस्थ भी ईशमानी है और एक आश्रम का महन्त भी ईशमानी है । दोनों में कोई अंतर नहीं है । स्वर्ग का देवता हो गया तो क्या, ईशमानिता ने इन्द्र को भी न छोड़ा । (श्रीभागवतजी १०/२५/८, ९, १०) प्रलयंकारी मेघों के बंधन खोल दिए ।

बस, फिर क्या था, अतिवृष्टि, अतिवात, विद्युतपात, तुषारपात होने लगा । ब्रजवासियों को प्राण संकट की स्थिति में देखकर प्रभु ने प्रतिविधि की । गिरिराज जी को छत्रवत् धारण कर ब्रजवासियों की रक्षा की क्योंकि –

गरब न कीजै बावरे हरि गरब प्रहारी । गरबहिं ते रावण गया, पाया दुख भारी ॥
जरन खुदी रघुनाथ के, मन नाहिं सुहाती । जाके हिय अभिमान है, वाकी तोरत छाती ॥
एक दया और दीनता, ले रहिये भाई । चरन गहौ जाय साधु के, रीझै रघुराई ॥
यही बड़ा उपदेश है, पर द्रोह न करिये । कहे 'मलूक' हरि सुमिरि के, भवसागर तरिये ॥ (श्रीमलूकदासजी)

अथवा **'गरब गोविन्दहि भावत नाहीं ।'** (सूरविनयपत्रिका - २८२) जिसमें भी ईशमानिता है उसका विनाश है फिर वह साधु हो अथवा देवता । भूलो मत, **'जाके हिय अभिमान है, ताकी तोरत छाती ।'** भगवान् ने इन्द्र का गर्व भंजन किया । सात दिन तक अनवरत् वृष्टि होने के बाद प्रलयकालीन मेघों का जल समाप्त हो गया । **"कृष्णयोगानुभावं तं निशाम्येन्द्रोऽतिविस्मितः । निःस्तम्भो भ्रष्टसङ्कल्पः स्वान् मेघान् संन्यवारयत् ॥"** (श्रीभागवतजी १०/२५/२४)

श्रीभगवान् की योगमाया का यह प्रभाव देखकर इन्द्र अतिविस्मित हो गए । अपना संकल्प पूर्ण न होते हुए देखकर उनकी सब हेकड़ी जाती रही फिर तो मेघों को अपने आप वर्षा करने से रोक दिया । वस्तुतः भगवान् साधन से प्रसन्न नहीं होते हैं । दण्डकारण्य के ऋषियों ने क्या कम साधन किया था – **"रघुबर ! रावरि यहै बड़ाई । थके देव साधन करि सब, सपनेहु नहिं देत दिखाई । केवट कुटिल भालू कपि कौनप, किये सकल संग भाई ॥ मिलि मुनिवृन्द फिरत दंडक वन, सो चरचो न चलाई । बारहि बार गीध सबरी की, बरनत प्रीति सुहाई ॥ यहि दरबार दीन को आदर, रीति सदा चलि आई । दीनदयालु दीन तुलसी की, काहू न सुरति कराई ॥"** (तुलसी-विनयपत्रिका - १६५)

निरभिमानिता से सेन, रैदास, कबीर, नामदेव को भगवान् का स्नेह प्राप्त हुआ और उच्च वर्ण, कुलोत्पन्न भट्ट, गोस्वामियों को मात्सर्य के अतिरिक्त क्या प्राप्त हुआ ?

जब निष्कपट भाव से सर्वस्व श्रीभगवान् के चरणों में समर्पित कर दिया जाएगा, ऐसी शरणागति के बाद ही दया होगी और उस दया से निश्चित ही दुरत्यय माया से मुक्त हो जाओगे । मायामुक्त मनुष्य की पहिचान है कि फिर श्वान व सियारों के भोजन रूप अपने और स्त्री, पुत्रादि के शरीर में ममाहम् बुद्धि नहीं रहेगी ।

श्रीमच्चैतन्य महाप्रभु ऐसे समय में जब वे अपनी माँ के एकमात्र पुत्र थे, उनके अग्रज गृहत्याग कर चुके थे, अनन्तर आप भी अपनी पत्नी विष्णुप्रियाजी व बिलखती वृद्धा शची माता को छोड़कर चले गये । कितना कठोर है वैराग्य धर्म ! यती धर्म लेने के बाद श्रीमन्महाप्रभुजी जब नदिया आये तो विरहणी विष्णुप्रियाजी से सहानुभूति की दो बातें भी नहीं की, केवल अपनी चरण पादुका छोड़कर चले गये, मूर्च्छित माँ की ओर मुड़कर भी न देखा । ममता का त्याग बहुत कठिन है, देखने में लगता है दयाशून्य हो गये हैं । वृद्धा माँ को छोड़ा, रोती-बिलखती युवती को छोड़ा । संसार को यह दिखाया कि परमार्थ-पथ पकड़ने के बाद ममताशून्य होना परमावश्यक है । हम लोग घर छोड़ते हैं तो आश्रम में ममता कर लेते हैं । एक विरक्त भी जिस कमरे में रहता है, उसमें उसकी ममता हो जाती है । इसलिए यतीधर्म में एक वृक्ष के नीचे एक ही रात सोने का नियम है । एक से अधिक रात रहोगे तो उस वृक्ष में भी ममता हो जायेगी ।

ये वा मयीशे कृतसौहृदार्था जनेषु देहम्भरवार्तिकेषु ।
गृहेषु जायात्मजरातिमत्सु न प्रीतियुक्ता यावदर्थाश्च लोके ॥ (श्रीभागवतजी ५/५/३)

भगवत्कृपा प्राप्ति के लिए अहंता-ममता का त्याग करना होगा । शरीरपोषियों से, धन, घर, स्त्री-सुतादि से ममता को मिटा दो । सम्बन्ध रखना भी है तो प्रयोजनमात्र रखो ।

नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं ।
अञ्जन कहा आँख जेहि फूटै, बहुतक कहौ कहाँ लौं ॥ (श्रीतुलसीविनयपत्रिका - १७४)

'तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार ।'

प्रह्लादजी कह रहे हैं – **मन्ये धनाभिजनरूपतपःश्रुतौजस्तेजःप्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः ।**

नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो भक्त्या तुतोष भगवान्गजयूथपाय ॥ (श्रीभागवतजी ७/९/९)

हे नाथ ! मेरी तो यह दृढ मान्यता है कि धन, कुलीनता, विद्या, रूप, तप, तेज, ओज, प्रभाव, पौरुष, बुद्धि, योग आदि दैवीय गुण भी भक्त वत्सल भगवान् को सन्तुष्ट करने में समर्थ नहीं है, केवल भक्ति ही आपके सन्तोष का हेतु है –

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के वचन – **न हि साधन सम्पत्या हरिस्तुष्यति कस्यचित् ।**

भक्तानां दैन्यमेवैकं हरितोषणसाधनम् ॥ (सुबोधिनी कारिका)

वस्तुतः साधन सम्पत्ति (ज्ञान, वैराग्यादि....) से भगवान् प्रसन्न नहीं होते, वे केवल दैन्य से प्रसन्न होते हैं, अतः दीन बनो । श्रीशंकर जी कह रहे हैं – **विद्यातपोवित्तवपुर्वयःकुलैःसतां गुणैः षड्भिरसत्तमेतरैः ।**

स्मृतौ हतायां भृतमानदुर्दृशः स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम् ॥ (श्रीभागवतजी ४/३/१७)

बिना दीनता के विद्या, तप, धन, अच्छा शरीर, युवावस्था और उच्च कुल मिल भी गया तो उससे केवल अभिमान ही बढ़ेगा, जिससे विवेक शक्ति का नाश हो जाएगा । **'दया दीनता दास भाव बिन, मिलैं न कुँवर कन्हाई ।'** (व्यासवाणी)

साधु हो अथवा विद्वान, मान (अभिमान) चेतना को दूषित कर देगा । ऐसा देखा गया है कि ऊँची-ऊँची स्थितियों पर पहुँचने के पश्चात् भी मदोत्पन्न हो जाता है । सेवा-धर्म की पराकाष्ठा पर पहुँचे भक्त श्रेष्ठ श्रीहनुमानजी को भी गर्व हो गया । **"राम चरन सरसिज उर राखी । चला प्रभंजनसुत बल भाषी ॥"** (रा.च.मा.लंका. ५६)

हनुमान जी का गर्व भंजन करने के लिए राम जी बहुधा भरत जी की प्रशंसा किया करते थे । अतः जब लक्ष्मणजी को मूर्छावस्था में देखा, तब प्रभु बोले – 'लक्ष्मण ! भरत होता तो तुम्हारी यह दशा न होती ।'

'गोपायतीह भरतस्तु ममानुजः किं यस्त्वामधिज्य धनुरुद्यतशक्तिपातात् ।' (श्रीहनुमन्नाटक)

यह सुनकर कपिश्रेष्ठ सोचते ऐसा न जाने क्या है भरतजी में । जिस समय संजीवनी बूटी लाने को हनुमानजी चले हैं तो गर्व के साथ बोले – **"हनुमान सविस्मयो रामम् हनुमति कृतप्रतिज्ञे यमोप्ययमः । पातालतः किमु सुधारस मानयामि निष्पीड्य चन्द्रममृतं किमुताहरामि । उद्दण्डचण्ड किरणं ननु वारयामि कीनाशपाशमनियं किमु चूर्णयामि ॥"** (श्रीहनुमन्नाटक) भगवन् ! आप कहें तो वस्त्र की भाँति चंद्रमा को निचोड़कर अमृत ले आऊँ, आप कहें तो पाताल फोड़कर नागों को मारकर उनका अमृत कुण्ड ले आऊँ, मुझे अधिक समय नहीं लगेगा, आप आज्ञा तो दें । संजीवनी बूटी लाते समय भरत जी के बिना फर के बाण से जब हनुमान जी भूमि पर गिरे, तो वहाँ भरतजी ने कहा –

"चढ़ु मम सायक सैल समेता । पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता ॥" (रा.च.मा.लंका. - ६०)

हे तात ! आप पर्वत सहित मेरे बाण पर चढ़कर अविलम्ब कृपाधाम श्रीराम जी के निकट पहुँच जाएंगे । यह सुनकर पुनः हनुमानजी को गर्व हुआ । **"सुनि कपि मन उपजा अभिमाना ।**

मोरें भार चलिहि किमि बाना ॥" (रा.च.मा.लंका. ६०)

अरे, मेरे भार से बाण कैसे चलेगा ? दूसरे ही क्षण भगवान् के अचिन्त्य प्रभाव का स्मरण हुआ और गर्व नष्ट हुआ फिर तो हनुमानजी ने भरतजी को भी 'प्रभु' शब्द से सम्बोधित किया ।

"तव प्रताप उर राखि प्रभु जैहउँ नाथ तुरन्त ।

अस कहि आयसु पाइ पद बंदि चलेउ हनुमंत ॥" (रा.च.मा.लंका. ६०)

अब तो हनुमान जी राम जी को भी भूलकर भरत जी का स्मरण करते हुए जा रहे हैं ।

"भरत बाहु बल सील गुन प्रभु पद प्रीति अपार ।

मन महुँ जात सराहत पुनि पुनि पवनकुमार ॥" (रा.च.मा.लंका. ६०)

कथनाशय है कि बड़े सी बड़ी स्थिति में पहुँचने पर भी सूक्ष्म से सूक्ष्म विकार (मद इत्यादि) सतत् सावधानी के अभाव में उत्पन्न होने लगते हैं, इस (सतत सावधानी) के लिए सबसे सहज-सरस साधन व साध्य स्वरूप विशुद्ध संतजनों का सत्संग ही है, जिसके श्रवण-मनन से अवश्य ही विशुद्ध भक्ति मिलती है ।

“श्रीजी संगीत विद्यालय” के
प्रथम वार्षिकोत्सव की
संगीतमयी प्रस्तुति

RNI REFERENCE NO. 1313397- REGISTRATION NO. UP BIL-2017/72945-TITLE CODE UP BIL-04953 POSTAL REGD.NO. 093/2024-2026 श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा 'गुप्ता प्रिन्टिंग प्रेस, खरौट गेट, कोसीकलाँ, मथुरा. उत्तरप्रदेश' से मुद्रित एवं मान मन्दिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.) से प्रकाशित,AGRA/WPP-12/2024-2026 AT 31.12.26